अप्रैल, 2014

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
महमूद अली खां

महत्वपूर्ण निर्णय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) –
धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के
लिए दावा – अपील – जहां निचले न्यायालय द्वारा अपेक्षित
अपेक्षाओं और उपलब्ध साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के
आधार पर अधिनिर्णय दिया गया हो वहां अपील में ऐसे
अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए ।

राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन बनाम
श्रीमती रेखा और अन्य 511

संसद् के अधिनियम

मुख्तारनामा अधिनियम, 1882 का हिन्दी में
प्राधिकृत पाठ (1) – (4)

पृष्ठ संख्या 441 – 580

(2014) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – अप्रैल, 2014 (पृष्ठ संख्या 441 – 580)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अप्रैल, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
आशिक हुसैन बनाम राज्य और अन्य	485
एन. वी. एस. जे. रामा राव बनाम ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन आफ़ इंडिया और अन्य	441
करम चन्द और अन्य बनाम जसबीर कौर अन्य	573
डा. वाई. एस. परमार यू. एच. एफ़. के सेवानिवृत्त अध्यापकों/ वैज्ञानिकों की कल्याण सोसाइटी, सोलन बनाम डा. वाई. एस. परमार विश्वविद्यालय के एच. एंड एफ़. सोलन, हिमाचल प्रदेश और अन्य	554
दिनेश पेडीवाल बनाम अपर जिला न्यायाधीश, (फास्ट ट्रैक) सं. 2, भीलवाड़ा और अन्य	515
देव राज बनाम जोंकी राम	549
नाथूदान मार्फत विधिक प्रतिनिधि बनाम तहसीलदार, ओसियां और अन्य	529
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम परमजीत सिंह और एक अन्य	492
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम तेजरिंग नोरबू और अन्य	500
न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लि. बनाम राज कुमार और अन्य	541
भारत संघ और अन्य बनाम बाबू सिंह	473
मीरा शर्मा बनाम राज्य और अन्य	462
राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन बनाम श्रीमती रेखा और अन्य	511
राधिका जायसवाल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य	450

(ii)

पृष्ठ संख्या

लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश **बनाम** राज्य सूचना आयोग
और एक अन्य

455

साउ कल्पना **बनाम** पंकज सुपादू रोज़तकर

507

संसद् के अधिनियम

मुखतारनामा अधिनियम, 1882 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ

(1) – (4)

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा, सचिव, विधायी विभाग	श्री लालजी प्रसाद, सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.
श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग	श्री के. जी. अग्रवाल, सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.
डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता, (पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.	श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय, प्रधान संपादक
प्रो. डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उत्तराखण्ड)	श्री महमूद अली खां, संपादक
डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय	श्री जुगल किशोर, संपादक
डा. आर. पी. सिंह, सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड	डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय, संपादक

सहायक संपादक	: सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान
उप-संपादक	: सर्वश्री दयाल चन्द ग़ोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 12

वार्षिक : ₹ 135

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग),
भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है। इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है। उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है। तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1. भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2. माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3. वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4. अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5. अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6. मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7. दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है।

पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1. संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2. श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3. चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4. आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5. भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन - ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6. हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7. भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8. भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9. प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10. विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11. विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

**विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)**

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 7 [सपठित संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 – धारा 6] – अवयस्क बालक की अभिरक्षा – कुटुम्ब न्यायालय की आवेदन को ग्रहण करने की अधिकारिता – संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 6 कुटुम्ब न्यायालय को आवेदन पर विचार करने से विवर्जित नहीं करती – अतः कुटुम्ब न्यायालय अवयस्क की अभिरक्षा के लिए फाइल आवेदन पर विचार कर सकता है ।

राधिका जायसवाल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य

450

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957

– धारा 103 – वर्ग 4 पदों की भर्ती के लिए विज्ञापन – शारीरिक रूप से निःशक्त अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण – शारीरिक रूप से निःशक्त अभ्यर्थी को अधिक अंक होने के कारण खुली योग्यता प्रवर्ग में स्थानान्तरण – याची द्वारा रिट याचिका में चुनौती – अधिसूचित सूची अनंतिम सूची होने के कारण याची को आक्षेप का अवसर – याची की याचिका खारिज किए जाने योग्य है ।

आशिक हुसैन बनाम राज्य और अन्य

485

– धारा 103 [सपठित तारीख 27 जून, 1979 के एस. आर. ओ. सं. 347 द्वारा अधिसूचित कानूनी नियम, 1979] – कोशकीट पालन सहायक के पद पर नियुक्ति – अर्हता – एक ही डिग्री के लिए दो फायदे देकर अतिरिक्त अंक दिया जाना – विधिमान्यता – एक ही डिग्री/प्रमाणपत्र के लिए दो फायदे नहीं दिए जा सकते

– सेवा – न्यायशास्त्र में एक प्रमाणपत्र के लिए दो बार अंक दिया जाना मान्य नहीं है – अतः ऐसा फायदा तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि विशिष्ट नियम एक डिग्री/प्रमाणपत्र के लिए दोहरे अंक दिए जाने के लिए उपबंध न करता हो ।

मीरा शर्मा बनाम राज्य और अन्य

462

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – क्षतियां – निःशक्तता – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा यह अभिवाक् करना कि दावेदार को क्षतियां उस पर हमले के परिणामस्वरूप आई थीं – साक्ष्य से यह साबित होना कि दावेदार को क्षतियां मोटर यान की अर्थात् ट्रक की टक्कर के कारण पहुंची थीं – दावा ग्राह्य है – अतः बीमा कंपनी प्रतिकर के लिए जिम्मेदार है ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम परमजीत सिंह और एक अन्य

492

– धारा 163-क और 166 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226] – रिट – दुर्घटना – क्षतियां कारित होना – उस प्राइवेट चिकित्सक से निःशक्तता प्रमाणपत्र प्राप्त करना जिसने उसका कभी उपचार नहीं किया – प्रतिकर – यदि दुर्घटना में क्षतिग्रस्त व्यक्ति को उस प्राइवेट चिकित्सक से प्राप्त निःशक्तता प्रमाणपत्र के आधार पर प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाता है जिसने उसका कभी उपचार नहीं किया तो ऐसा प्रतिकर अयुक्तियुक्त और अवैध होगा और इस निमित्त पारित निर्णय और डिक्री कायम रखे जाने योग्य नहीं होगी ।

न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लि. बनाम राज कुमार और अन्य

541

– धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना –
प्रतिकर के लिए दावा – अपील – जहां निचले
न्यायालय द्वारा अपेक्षित अपेक्षाओं और उपलब्ध साक्ष्य
के उचित मूल्यांकन के आधार पर अधिनिर्णय दिया गया
हो वहां अपील में ऐसे अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया
जाना चाहिए ।

**राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन बनाम
श्रीमती रेखा और अन्य**

511

– धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना –
मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – जहां दावेदार द्वारा
चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान
चलाना साबित कर दिया गया हो वहां प्रतिकर
अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए ।

**नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम तेजरिंग
नोरबू और अन्य**

500

– धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना –
दावा – प्रतिकर – परिमाण – जहां दावेदार द्वारा अपना
पक्षकथन साबित कर दिया गया हो वहां न्यायालय द्वारा
विधि के अनुसार समुचित गुणक लागू करके प्रतिकर
अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए ।

**नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम तेजरिंग
नोरबू और अन्य**

500

– धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – मृत्यु
– प्रतिकर के लिए दावा – बीमाकृत यान का
उपयुक्तता प्रमाणपत्र पर्यवसित होना – जहां बीमा
पालिसी के निबंधनों के अतिक्रमण में यान चलाया जा
रहा हो वहां भी बीमा कंपनी अपने दायित्व से मुक्त नहीं
हो जाती – तथापि, बीमा कंपनी संदेय धनराशि बीमाकृत

से वसूल करने की हकदार होगी ।

**नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम तेजरिंग
नोरबू और अन्य**

500

– धारा 166 – मोटर दुर्घटना द्वारा क्षतियां –
प्रतिकर के लिए दावा – निचले न्यायालय द्वारा
अधिनिर्णीत प्रतिकर के लिए तर्कसंगत कारण दिया
जाना – अधिनिर्णीत प्रतिकर में हस्तक्षेप करना उचित
नहीं है ।

**नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम परमजीत
सिंह और एक अन्य**

492

राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955

– धारा 58 और 207 [सपटित सिविल प्रक्रिया
संहिता, 1908 – आदेश 7, नियम 11] – भूमि का कब्जा
– समर्पण – प्रत्यर्पण के लिए वाद – सिविल न्यायालय
की अधिकारिता – जहां किसी काश्तकार द्वारा भू-स्वामी
को लिखित नोटिस प्रेषित करके समर्पण की इच्छा
प्रकट की गई हो वहां ऐसे नोटिस का विरोध करने या
नोटिस को अमान्य घोषित कराने के लिए भू-स्वामी
द्वारा वाद फाइल किया जा सकता है – अतः वाद
सिविल न्यायालय में पोषणीय है ।

**नाथूदान मार्फत विधिक प्रतिनिधि बनाम तहसीलदार,
ओसियां और अन्य**

529

**राजस्थान न्यायालय फीस और वाद मूल्यांकन
अधिनियम, 1961**

– धारा 24 और 38 – कलक्टर द्वारा फर्म के
विरुद्ध वसूली प्रमाणपत्र जारी किया जाना – वादियों
द्वारा मांगपत्र के लिए जिम्मेदार न होने की घोषणा के
लिए वाद – न्यायालय फीस – जहां वादी द्वारा ऐसी किसी

घोषणा का अनुतोष प्रदान करने के लिए वाद संस्थित किया गया हो वहां वादी न्यायालय फीस संदत्त करने के लिए दायी है ।

**दिनेश पेडीवाल बनाम अपर जिला न्यायाधीश,
(फास्ट ट्रैक) सं. 2, भीलवाड़ा और अन्य**

515

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 19(2) – प्रेस और मीडिया की स्वतंत्रता – विधायक द्वारा दिए गए भाषणों को आपत्तिजनक बताया जाना – प्रेस और मीडिया को प्रसारण करने से रोक लगाने हेतु निदेश करने के लिए रिट – प्रेस की स्वतंत्रता संविधान के अनुच्छेद 19(2) द्वारा संरक्षित है – इसे किसी लोकतांत्रिक सरकार द्वारा प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता तथापि, जहां किसी कार्य से साम्प्रदायिक उन्माद उत्पन्न होता हो या विधि और व्यवस्था बनाए रखने में खतरा हो वहां सरकार रोक के लिए सांविधानिक उपाय कर सकती है ।

**एन. वी. एस. जे. रामा राव बनाम ब्राडकास्टिंग
कारपोरेशन आफ़ इंडिया और अन्य**

441

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 11 और आदेश 39, नियम 1 – प्रतिवादी द्वारा भूमि पर प्रतिकूल कब्जे के आधार पर स्वामित्व का दावा – प्रतिवादी द्वारा प्रतिकूल कब्जे को साबित करने के लिए कोई दस्तावेज़ी साक्ष्य पेश न किया जाना – वादी द्वारा अपने स्वामित्व को साबित करने के लिए जमाबंदी की प्रतियां और सीमांकन रिपोर्ट की प्रति दाखिल करना – प्रतिवादी का प्रतिकूल कब्जा साबित नहीं माना जा सकता – अतः व्यादेश के लिए निचले न्यायालय के आदेश उचित हैं ।

देव राज बनाम जोंकी राम

549

– धारा 24 – सिविल वाद – स्थानांतरण – पति द्वारा पत्नी के आवास से 400 किलोमीटर दूर कल्याण में हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां संस्थित किया जाना – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध जलगांव न्यायालय में अनेक कार्यवाहियां संस्थित किया जाना – स्थानांतरण के मामले में न्यायालय को सुविधा के संतुलन को दृष्टिगत करते हुए स्थानांतरण का आदेश पारित करना चाहिए ।

साउ कल्पना बनाम पंकज सुपादू रोज़तकर

507

सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968

– धारा 11(2) और सीमा सुरक्षा बल नियम, 1969 का नियम 22(2) और 177 – सीमा सुरक्षा बल में कांस्टेबल – अनुपस्थिति के आधार पर बर्खास्तगी – सेवक द्वारा यह अभिवचन किया जाना कि उसने अशान्ति के कारण अपने कुटुम्ब को स्थानांतरित करने के लिए मौखिक अनुज्ञा ली थी – सेवक को कारण बताओ सूचना के साथ उसके प्रतिकूल रिपोर्टें न भेजी जानी – सेवक को बर्खास्त करना विधिविरुद्ध है तथापि, विभाग नए सिरे से कार्यवाही कर सकता है ।

भारत संघ और अन्य बनाम बाबू सिंह

473

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22)

– धारा 2(1), (6) और 8 – अभ्यर्थी द्वारा सिविल सेवा उत्तर पुस्तिका की फोटो प्रति मांगा जाना – आयोग द्वारा धारा 8 का अवलंब लेते हुए प्रति देने से इनकार – विधिमान्यता – अधिनियम का उद्देश्य सूचना का अधिकतम प्रकटीकरण और प्रकटीकरण से न्यूनतम छूट सुनिश्चित करना है – आयोग उत्तर पुस्तिका की प्रति

देने से इनकार नहीं कर सकता ।

**लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश बनाम राज्य सूचना
आयोग और एक अन्य**

455

**हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय कृषि, बाग़बानी
और वन अधिनियम, 1986**

– धारा 42 और 44(4) [सपठित विश्वविद्यालय स्टेच्यूट्स का स्टेच्यूट 9.27 तथा संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14] – विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त अध्यापक और वैज्ञानिकों को सेवानिवृत्ति फायदे – विश्वविद्यालय कर्मचारियों को वही नियम लागू होना जो राज्य सरकार के कर्मचारियों को लागू होते हैं – उपदान और सेवानिवृत्ति फायदे देने में विभेद – विधिमान्यता – ऐसा विभेद मनमाना और संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी माना जाएगा ।

**डा. वाई. एस. परमार यू. एच. एफ़. के
सेवानिवृत्त अध्यापकों/वैज्ञानिकों की कल्याण
सोसाइटी, सोलन बनाम डा. वाई. एस. परमार
विश्वविद्यालय के एच. एंड एफ़. सोलन,
हिमाचल प्रदेश और अन्य**

554

**हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण
अधिनियम, 1987**

– धारा 14(3)(ग) – मकान-मालिक द्वारा भवन के पुनः निर्माण के लिए भवन खाली कराना – किराया नियंत्रक द्वारा किराए की बकाया और भवन के पुनः निर्माण के आधार पर बेदखली का आदेश – पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय द्वारा पुनः निर्माण के लिए अनुमोदित रेखांकन दाखिल करने की शर्त के साथ किराया नियंत्रक के आदेश की पुष्टि – किराएदार द्वारा नियंत्रक

(x)

पृष्ठ संख्या

के आदेशानुसार उपयोग और अधिभोग प्रभार जमा न किया जाना – विधि के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि मकान-मालिक निष्पादन न्यायालय के समक्ष भवन का स्वीकृत रेखांकन पेश करे – किराएदार बेदखल किए जाने, बकाया किराए का संदाय करने तथा प्रभारों की वसूली किए जाने के लिए जिम्मेदार है ।

करम चन्द और अन्य बनाम जसबीर कौर और
अन्य

573

एन. वी. एस. जे. रामा राव

बनाम

ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन आफ़ इंडिया और अन्य

तारीख़ 9 जनवरी, 2013

न्यायमूर्ति एल. नरसिंहमारेड्डी और न्यायमूर्ति संजय कुमार

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 19(2) – प्रेस और मीडिया की स्वतंत्रता – विधायक द्वारा दिए गए भाषणों को आपत्तिजनक बताया जाना – प्रेस और मीडिया को प्रसारण करने से रोक लगाने हेतु निदेश करने के लिए रिट – प्रेस की स्वतंत्रता संविधान के अनुच्छेद 19(2) द्वारा संरक्षित है – इसे किसी लोकतांत्रिक सरकार द्वारा प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता तथापि, जहां किसी कार्य से साम्प्रदायिक उन्माद उत्पन्न होता हो या विधि और व्यवस्था बनाए रखने में खतरा हो वहां सरकार रोक के लिए सांविधानिक उपाय कर सकती है।

पक्षकार ने व्यक्तिगत रूप से जो एक पेशेवर अधिवक्ता है, यह घोषणा चाही है कि आदिलाबाद और निजामाबाद में अकबरुद्दीन उवैसी द्वारा दिए गए भड़काऊ भाषण का प्रसारण रोकने के लिए राज्य द्वारा कार्रवाई न करना अवैध, मनमाना और अन्यायोचित है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 25 का अतिक्रमणकारी है। रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारत के संविधान की प्रस्तावना में यह उल्लेख किया गया है कि हमारे संविधान निर्माताओं का यह प्रयास था कि इस देश के सभी नागरिकों को सुरक्षा प्रदत्त करना, दूसरों के सम्मुख अपने विचारों को रखना, विचारों, अभिव्यक्ति, विश्वास, पूजा और प्रार्थना आदि की स्वतंत्रता प्रदान की जाए। विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए यह प्रयास संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में परिलक्षित होता है जो नागरिकों के भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को संरक्षित करता है। तथापि, यह अधिकार एक आत्यंतिक अधिकार नहीं है अपितु

अनुच्छेद 19(2) में उल्लिखित सुरक्षापायों के अध्यक्षीन है । तद्द्वारा राज्य को विधि द्वारा भारत की सम्प्रभुता और अखंडता के हित में अधिकार के प्रयोग पर युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करने के लिए सशक्त किया गया है और यह निर्बंधन राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मित्रतापूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शालीनता या चरित्रता या न्यायालय के अवमान के संबंध में, मानहानि या किसी अपराध के भड़काने के संबंध में है । याची ने वैयक्तिक रूप से उपस्थित होकर यह दलील दी है कि विधायक अकबरुद्दीन उवैसी के अभिकथित भाषणों ने लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है और परिणामतः लोगों को अपराध करने के लिए उत्प्रेरित किया है । अतः उसने यह दलील दी है कि राज्य को प्रेस और मीडिया को उसका प्रसार करने से रोकना चाहिए । भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अधीन मानव अधिकार के रूप में और सिविल और राजनैतिक अधिकारों के आधार पर अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अधीन मान्यता दी गई है । आई. सी. सी. पी. आर. के अनुच्छेद 19 में इस आशय का उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को हस्तक्षेप के बिना राय व्यक्त करने का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है । इस अधिकार में अनुरोध की स्वतंत्रता, सभी प्रकार की सूचना प्राप्त करने और विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता सम्मिलित है और इसकी कोई सीमाएं नहीं हैं चाहे वह मौखिक रूप से हो या लिखित रूप से अथवा प्रिन्ट करने के लिए चाहे वह कला के रूप में हो या अपनी पसन्द के किसी अन्य मीडिया के द्वारा । अनुच्छेद 19 यह भी उल्लेख करता है कि इस अधिकार के प्रयोग में “विशेष कर्तव्य और जिम्मेदारियां” सम्मिलित हैं और इसलिए ये अधिकार अन्यों के अधिकारों और ख्यातियों का सम्मान करने के लिए कतिपय निर्बंधनों के अध्यक्षीन हो सकते हैं या राष्ट्रीय सुरक्षा के संरक्षण, लोक व्यवस्था, लोक स्वास्थ्य या शिष्टाचार के संरक्षण के लिए हो सकते हैं । इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि किसी लोकतांत्रिक राज्य में भाषण की स्वतंत्रता स्वतंत्र प्रेस/मीडिया द्वारा अत्यधिक महत्वपूर्ण है । प्रेस की स्वतंत्रता बड़ी प्रतिरक्षाओं में से एक है और इसे किसी लोकतांत्रिक सरकार द्वारा कभी भी प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता । जैसा कि जार्ज मेसन अमेरिकन कवि ने जिसे प्रख्यात रूप से फादर आफ़ दि बिल आफ़ राइट्स कहा जाता है, कहा है कि भाषण और लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के बीच अत्यधिक उल्लेखनीय कड़ी अलकजेण्डर माइकलजान है । उसने यह

कहा है कि लोकतंत्र की संकल्पना लोगों द्वारा अपनी सरकार चलाना है । ऐसी कार्य प्रणाली के लिए स्वतंत्र निर्वाचन आवश्यक है । समुचित ज्ञानशीलता के लिए स्वतंत्र सूचना और विचारों पर निर्बंधन नहीं होना चाहिए । माइकलजान के अनुसार जहां शक्ति सूचना और आलोचना द्वारा निर्वाचन को बिगाड़ने के लिए समर्थ होने के लिए सशक्त न हो वहां आवश्यक विचारों की स्वतंत्रता सही नहीं होगी । माइकलजान ने यह स्वीकार किया है कि छलसाधित राय की इच्छा समाज को फायदा प्रदान करने के लिए एक हेतुक है । तथापि, उन्होंने यह भी कहा है कि गलत बात को पसंद करना प्रजातांत्रिक विचारों के अर्थ को ही नकार देता है । अतः साशय हेतुक के होते हुए भी प्राधिकारियों द्वारा प्रेस पर नियंत्रण लगाना लोकतांत्रिक गारंटी के लिए अवांछनीय रोक के समान होगा जब तक कि संविधान के अनुच्छेद 19(2) द्वारा ऐसा निष्कर्ष संरक्षित न हो । हमें इस युक्ति को ध्यान में रखना चाहिए । जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यों का संबंध है, प्रेस और मीडिया ने विधायक अकबरुद्दीन उवैसी द्वारा निरमल और निजामाबाद में दिए गए भाषणों को लिखित रूप में प्रस्तुत किया है जिसकी अंतर्वस्तु के बारे में यह कहा गया है कि वह भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराध गठित करती है । यह भी स्वीकृत तथ्य है कि इस संबंध में विधि की प्रक्रिया पहले ही आरंभ हो चुकी है और विधायक के विरुद्ध मामले रजिस्ट्रीकृत किए गए हैं जिनका निर्णय विधि के अनुसार किया जाएगा । वर्तमान में विवादक यह है कि क्या संविधान के अनुच्छेद 19(2) द्वारा परिकल्पित निर्बंधनों के निबंधनों में ऐसे कोई आधार बताए गए हैं जो प्रेस और मीडिया की स्वतंत्रता को इस विवादक के संबंध में आयोजनों को करने के लिए रोकते हों । जो बात लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हो या अपराध करने को उकसाने वाली प्रवृत्ति की हो और संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) द्वारा संरक्षित स्वतंत्रता के निर्बंधन के लिए आधार गठित करती हो, उसे शून्य में नहीं समझा जा सकता या लागू नहीं किया जा सकता । राज्य के समक्ष इस संबंध में वास्तविक संकट होना चाहिए और तब राज्य संविधान के अनुच्छेद 19(2) के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब ले सकता है । तथापि, वे घटनाएं जिन पर हम इस संबंध में विचार कर रहे हैं, कुछ समय पहले घटित होना बताई गई हैं, तथापि, याची यह साबित नहीं कर सका है कि ये घटनाएं विधि और व्यवस्था को स्पष्ट रूप से प्रभावित करती हैं या अपराध करने के लिए प्रेरित करती हैं । तथापि, छुट-पुट प्रदर्शनों और भाषणों को किसी धार्मिक

या साम्प्रदायिक संघर्ष या शान्ति में विघ्न के रूप में नहीं माना जा सकता । (पैरा 3, 5, 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1988]	ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 775 = (1988) 1 एस. सी. सी. 668 : रमेश बनाम भारत संघ ;	12
[1973]	ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 1091 = (1973) 1 एस. सी. सी. 659 : संतोख सिंह बनाम दिल्ली प्रशासन ;	7
[1947]	ए. आई. आर. 1947 नागपुर 1 : भगवती चरण शुक्ला बनाम प्रान्तीय सरकार ।	12

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2013 की रिट याचिका सं. 781.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से

श्री एन. वी. एस. जे. रामा राव
(स्वयं)

प्रत्यर्थियों की ओर से

श्री पूनम अशोक गौड़

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति संजय कुमार ने दिया ।

न्या. कुमार – पक्षकार ने व्यक्तिगत रूप से जो एक पेशेवर अधिवक्ता है, यह घोषणा चाही है कि आदिलाबाद और निजामाबाद में अकबरुद्दीन उवैसी द्वारा दिए गए भड़काऊ भाषण का प्रसारण रोकने के लिए राज्य द्वारा कार्रवाई न करना अवैध, मनमाना और अन्यायोचित है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 25 का अतिक्रमणकारी है ।

2. याची ने यह अभिवाक् किया है कि विधायक अकबरुद्दीन उवैसी ने तारीख 24 दिसंबर, 2012 को आदिलाबाद के निरमल में भड़काऊ भाषण दिया था और इसके पश्चात् निजामाबाद में जहां इसका बार-बार प्रसारण किया गया है और इस बारे में बहस की गई है, उक्त भाषण से दोनों समुदायों की भावनाओं को ठेस पहुंची है और इससे अशान्ति होने की संभावना है । उसने यह आशंका व्यक्त की है कि आगे विधि और व्यवस्था पर नियंत्रण करना कठिन हो जाएगा । उसने इस तथ्य का निर्देश किया है

कि विधायक अकबरुद्दीन उवैसी के विरुद्ध निजामाबाद और हैदराबाद में पहले ही दांडिक कार्यवाहियां आरंभ की जा चुकी हैं और अन्य स्थानों पर भी ये कार्यवाहियां की गई हैं और यह उल्लेख किया कि उसकी शिकायत यह है कि विधायक के उक्त भाषणों की अंतर्वस्तु को यह महसूस किए बिना बार-बार मीडिया में प्रसारण किया जा रहा है कि इससे विधि और व्यवस्था की समस्या हो सकती है और दोनों समुदायों की धार्मिक भावनाएं भड़क सकती हैं। उसने यह कहा है कि शान्ति भंग होने और साम्प्रदायिक हिंसा होने की संभावना है जो अंततः जीवन के अधिकार को प्रभावित कर सकती है।

3. भारत के संविधान की प्रस्तावना में यह उल्लेख किया गया है कि हमारे संविधान निर्माताओं का यह प्रयास था कि इस देश के सभी नागरिकों को सुरक्षा प्रदत्त करना, दूसरों के सम्मुख अपने विचारों को रखना, विचारों, अभिव्यक्ति, विश्वास, पूजा और प्रार्थना आदि की स्वतंत्रता प्रदान की जाए। विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए यह प्रयास संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में परिलक्षित होता है जो नागरिकों के भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को संरक्षित करता है। तथापि, यह अधिकार एक आत्यंतिक अधिकार नहीं है अपितु अनुच्छेद 19(2) में उल्लिखित सुरक्षापायों के अध्वधीन है। तद्वारा राज्य को विधि द्वारा भारत की सम्प्रभुता और अखंडता के हित में अधिकार के प्रयोग पर युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करने के लिए सशक्त किया गया है और यह निर्बंधन राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मित्रतापूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शालीनता या चरित्रता या न्यायालय के अवमान के संबंध में, मानहानि या किसी अपराध के भड़काने के संबंध में है। याची ने वैयक्तिक रूप से उपस्थित होकर यह दलील दी है कि विधायक अकबरुद्दीन उवैसी के अभिकथित भाषणों ने लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है और परिणामतः लोगों को अपराध करने के लिए उत्प्रेरित किया है। अतः उसने यह दलील दी है कि राज्य को प्रेस और मीडिया को उसका प्रसार करने से रोकना चाहिए।

4. तथापि, हम उक्त दलीलों से सहमत नहीं हो सकते। यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि भाषण की स्वतंत्रता और परिणामतः प्रेस की स्वतंत्रता हमारी सामाजिक और प्रजातंत्रीय नीति का पूर्ण रूप से ताना-बाना है और इस अधिकार के प्रयोग पर कोई निर्बंधन अधिरोपित करना उनके लिए कठिनाई उत्पन्न करना होगा।

5. भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अधीन मानव अधिकार के रूप में और सिविल और राजनैतिक अधिकारों के आधार पर अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अधीन मान्यता दी गई है। आई. सी. सी. पी. आर. के अनुच्छेद 19 में इस आशय का उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को हस्तक्षेप के बिना राय व्यक्त करने का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार में अनुरोध की स्वतंत्रता, सभी प्रकार की सूचना प्राप्त करने और विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता सम्मिलित है और इसकी कोई सीमाएं नहीं हैं चाहे वह मौखिक रूप से हो या लिखित रूप से अथवा प्रिन्ट करने के लिए चाहे वह कला के रूप में हो या अपनी पसन्द के किसी अन्य मीडिया के द्वारा। अनुच्छेद 19 यह भी उल्लेख करता है कि इस अधिकार के प्रयोग में “विशेष कर्तव्य और जिम्मेदारियां” सम्मिलित हैं और इसलिए ये अधिकार अन्यो के अधिकारों और ख्यातियों का सम्मान करने के लिए कतिपय निर्बंधनों के अधीन हो सकते हैं या राष्ट्रीय सुरक्षा के संरक्षण, लोक व्यवस्था, लोक स्वास्थ्य या शिष्टाचार के संरक्षण के लिए हो सकते हैं।

6. यूनाइटेड स्टेटस संविधान का प्रथम संशोधन इस प्रकार उपबंध करता है – “कांग्रेस भाषण या प्रेस की स्वतंत्रता को कम करने के लिए कोई विधि नहीं बनाएगी।” यह संशोधन निर्बंधनों में और पुस्तकों में आत्यंतिक है और इस अधिकार के प्रयोग के लिए कोई अपवाद नहीं है। तथापि, अमरीका के न्यायालयों ने अधिकार की व्याप्ति को कम करने के लिए “स्पष्ट और वर्तमान खतरा” (क्लियर एण्ड प्रजेन्ट डेन्जर) नियम को विकसित किया है जिसके द्वारा न्यायालय यह निर्धारित कर सकता है कि चर्चा कहां समाप्त होगी और कहां उत्तेजना भड़केगी। प्रथम संशोधन केवल अभिव्यक्ति को संरक्षित करने के लिए किया गया था जिससे कि चर्चा और सहमति की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को स्वीकार किया जा सके न कि ऐसे शब्दों द्वारा जो बल को प्रभावित करें जो प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के प्रयोग द्वारा उद्देश्य प्राप्त करने के लिए उपयुक्त हो। भाषण की स्वतंत्रता की हमारी सांविधानिक गारंटी भिन्न आधार पर निर्भर करती है क्योंकि इससे संविधान के अनुच्छेद 19(2) द्वारा अधिकथित निर्बंधनों द्वारा नियंत्रित किया गया है जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

7. अतः भारतीय सांविधानिक स्कीम संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन दी गई स्वतंत्रता और अनुच्छेद 19(2) द्वारा उल्लिखित सामाजिक

हितों के बीच संतुलन बनाने के उद्देश्य से है। (संतोख सिंह बनाम दिल्ली प्रशासन¹ वाला मामला देखिए)।

8. वाक्-स्वातंत्र और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आवश्यकता व्यक्तिव्यक्तता के भीतर है और हमारी सांविधानिक घोषणा हस्तक्षेप के बिना है। [अनुच्छेद 19(2)]

9. इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि किसी लोकतांत्रिक राज्य में भाषण की स्वतंत्रता स्वतंत्र प्रेस/मीडिया द्वारा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प्रेस की स्वतंत्रता बड़ी प्रतिरक्षाओं में से एक है और इसे किसी लोकतांत्रिक सरकार द्वारा कभी भी प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता। जैसा कि जार्ज मेसन अमेरिकन कवि ने जिसे प्रख्यात रूप से फादर आफ़ दि बिल आफ़ राइट्स कहा जाता है, कहा है कि भाषण और लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के बीच अत्यधिक उल्लेखनीय कड़ी अलकजेण्डर माइकलजान है। उसने यह कहा है कि लोकतंत्र की संकल्पना लोगों द्वारा अपनी सरकार चलाना है। ऐसी कार्य प्रणाली के लिए स्वतंत्र निर्वाचन आवश्यक है। समुचित ज्ञानशीलता के लिए स्वतंत्र सूचना और विचारों पर निर्बंधन नहीं होना चाहिए। माइकलजान के अनुसार जहां शक्ति सूचना और आलोचना द्वारा निर्वाचन को बिगाड़ने के लिए समर्थ होने के लिए सशक्त न हो वहां आवश्यक विचारों की स्वतंत्रता सही नहीं होगी। माइकलजान ने यह स्वीकार किया है कि छलसाधित राय की इच्छा समाज को फायदा प्रदान करने के लिए एक हेतुक है। तथापि, उन्होंने यह भी कहा है कि गलत बात को पसंद करना प्रजातांत्रिक विचारों के अर्थ को ही नकार देता है। अतः साशय हेतुक के होते हुए भी प्राधिकारियों द्वारा प्रेस पर नियंत्रण लगाना लोकतांत्रिक गारंटी के लिए अवांछनीय रोक के समान होगा जब तक कि संविधान के अनुच्छेद 19(2) द्वारा ऐसा निष्कर्ष संरक्षित न हो। हमें इस व्यक्ति को ध्यान में रखना चाहिए :-

“प्रेस स्वतंत्रता के बिना समाज की स्वतंत्रता नहीं हो सकती। यह बात स्वतः सिद्ध है। तथापि, प्रेस की स्वतंत्रता ही पर्याप्त नहीं है अपितु इसकी स्वतंत्रता समाज की स्वतंत्रता से है। प्रेस की स्वतंत्रता की सांविधानिक गारंटी का क्षेत्र और प्रकृति पर इस प्रकाश में विचार किया जाए और लागू किया जाए। इस बात के होते हुए भी यदि

¹ ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 1091 = (1973) 1 एस. सी. 659.

किसी समाचार मद का प्रकाशन या प्रसारण किसी नागरिक के अधिकारों को प्रभावित करता है या साधारणतया अतिक्रमणकारी स्थिति उत्पन्न करता है तो इसके लिए विधि के अधीन ऐसी स्थिति को संभालने के लिए उपाय उपबंधित किए गए हैं । तथापि, वाक्-स्वातंत्र की स्वतंत्रता पर कोई निर्बंधन चाहे वह किसी भी प्रकार से हो, चाहे वह प्रेस के बारे में हो या इस संबंध में कोई और कदम हो, निश्चित और अखंडनीय सामग्री के आधार पर होना चाहिए । जहां स्वतंत्रता दी जाती है वहां निर्बंधन एक अपवाद के रूप में होता है ।”

10. जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यों का संबंध है, प्रेस और मीडिया ने विधायक अकबरुद्दीन उवैसी द्वारा निरमल और निजामाबाद में दिए गए भाषणों को लिखित रूप में प्रस्तुत किया है जिसकी अंतर्वस्तु के बारे में यह कहा गया है कि वह भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय अपराध गठित करती है । यह भी स्वीकृत तथ्य है कि इस संबंध में विधि की प्रक्रिया पहले ही आरंभ हो चुकी है और विधायक के विरुद्ध मामले रजिस्ट्रीकृत किए गए हैं जिनका निर्णय विधि के अनुसार किया जाएगा । वर्तमान में विवाद्यक यह है कि क्या संविधान के अनुच्छेद 19(2) द्वारा परिकल्पित निर्बंधनों के निर्बंधनों में ऐसे कोई आधार बताए गए हैं जो प्रेस और मीडिया की स्वतंत्रता को इस विवाद्यक के संबंध में आयोजनों को करने के लिए रोकते हों ।

11. जो बात लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हो या अपराध करने को उकसाने वाली प्रवृत्ति की हो, और संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) द्वारा संरक्षित स्वतंत्रता के निर्बंधन के लिए आधार गठित करती हो, उसे शून्य में नहीं समझा जा सकता या लागू नहीं किया जा सकता । राज्य के समक्ष इस संबंध में वास्तविक संकट होना चाहिए और तब राज्य संविधान के अनुच्छेद 19(2) के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब ले सकता है । तथापि, वे घटनाएं जिन पर हम इस संबंध में विचार कर रहे हैं, कुछ समय पहले घटित होना बताई गई हैं, तथापि, याची यह साबित नहीं कर सका है कि ये घटनाएं विधि और व्यवस्था को स्पष्ट रूप से प्रभावित करती हैं या अपराध करने के लिए प्रेरित करती हैं । तथापि, छुट-पुट प्रदर्शनों और भाषणों को किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संघर्ष या शान्ति में विघ्न के रूप में नहीं माना जा सकता ।

12. रमेश बनाम भारत संघ¹ वाले मामले में न्यायमूर्ति सुब्बासाची मुखर्जी ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए भगवती चरण शुक्ला बनाम प्रान्तीय सरकार² वाले मामले में न्यायमूर्ति विवियन बोस द्वारा अभिव्यक्त निम्नलिखित मत को स्वीकार किया है :-

“..... शब्दों का प्रभाव युक्तियुक्त, दृढ़ निश्चयी, पुष्ट और उत्साहित व्यक्ति के मानकों से निर्णीत किया जाना चाहिए न कि कमजोर और नाकाफी विवेक से और न ही उनसे जो हर बात को नकारात्मक सोचकर खतरा मानते हैं। हमारी राय में यह किसी फिल्म के प्रदर्शन या किसी पुस्तक को पढ़ने के प्रभाव को जांचने में एक सही निष्कर्ष है। यह एक साधारण युक्तियुक्त व्यक्ति के स्तर की सोच है या जैसा कि इंग्लिश विधि में कहा गया है कि ‘दी मेन आन दी टॉप आफ क्लमफाम ओमनीबस’।”

13. अतः युक्तियुक्त व्यक्ति के स्तर को लागू करते हुए विधायक के अभिकथित भाषणों का प्रेस और मीडिया द्वारा प्रकाशन हमारे मत में याची की आशंका गलत है और आधार रहित है। इस विवाद्यक के संबंध में साधारण जनता द्वारा उपदर्शित दूरदर्शिता और संतुलन खतरे को झुठलाती है।

14. अतः हमें मामले में हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार प्रतीत नहीं होता है।

15. तदनुसार रिट याचिका खारिज की जाती है। खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

रिट याचिका खारिज की गई।

मह.

¹ ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 775 = (1988) 1 एस. सी. सी. 668.

² ए. आई. आर. 1947 नागपुर 1.

राधिका जायसवाल

बनाम

आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 15 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति नौशाद अली

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 7 [सपठित संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 – धारा 6] – अवयस्क बालक की अभिरक्षा – कुटुम्ब न्यायालय की आवेदन को ग्रहण करने की अधिकारिता – संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 6 कुटुम्ब न्यायालय को आवेदन पर विचार करने से विवर्जित नहीं करती – अतः कुटुम्ब न्यायालय अवयस्क की अभिरक्षा के लिए फाइल आवेदन पर विचार कर सकता है ।

यह रिट याचिका प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा 2012 की ओ. पी. सं. 116 के साथ कुटुम्ब न्यायालय, हैदराबाद की कार्यवाहियों के विरुद्ध निषेध का अनुरोध करते हुए इस आधार पर फाइल की गई है कि मामले में कुटुम्ब न्यायालय को कोई अधिकारिता नहीं है और इसलिए ओ. पी. ग्राह्य नहीं है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता, कुटुम्ब न्यायालय, 1984 की धारा 7 में प्रदत्त की गई है । उक्त अधिनियम की धारा 7 में यह कहा गया है कि इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, (क) कुटुम्ब न्यायालय को इस स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों की बाबत, तत्समय प्रवृत्त, किसी विधि के अधीन किसी जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य पूर्ण अधिकारिता होगी और वह उसका प्रयोग करेगा ; और (ख) कुटुम्ब न्यायालय के बारे में, ऐसी विधि के अधीन ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वह ऐसे क्षेत्र के लिए, जिस पर कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार है, यथास्थिति, जिसमें न्यायालय या अधीनस्थ सिविल न्यायालय है । उपबंध पूर्णतया स्पष्ट है और कुटुम्ब न्यायालय को उक्त अधिनियम के अधीन स्थापित

कुटुम्ब न्यायालय को शक्ति प्रदत्त करता है और ऐसी समस्त शक्तियां प्रदत्त करता है जो ऐसे मामलों के संबंध में जिला न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य हैं और ऐसी शक्तियां कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य की गई हैं। कुटुम्ब न्यायालय को जिला न्यायालयों के समान रखा गया है और उन्हें विनिर्दिष्ट रूप से इन न्यायालयों द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियां प्रदत्त की गई हैं। अतः कुटुम्ब न्यायालय को बालक की अभिरक्षा के लिए फाइल किए गए किसी आवेदन को ग्रहण करने की अधिकारिता है जैसा कि अधिनियम द्वारा अनुध्यात है। इसके अतिरिक्त जहां किसी कुटुम्ब न्यायालय को किसी क्षेत्र के लिए स्थापित किया गया है वहां कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी जिला न्यायालय या अधीनस्थ न्यायालय को मामलों पर विचार करने के लिए प्राधिकृत नहीं किया गया है। अतः अन्य न्यायालयों में निहित अधिकारिता उक्त अधिनियम की धारा 8 के आधार पर विवर्जित की गई है। उपर्युक्त उपबंधों से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि केवल कुटुम्ब न्यायालय प्रश्नगत मामले में विचार करने के लिए सक्षम है। याची के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि कुटुम्ब न्यायालय को अधिनियम की धारा 6 के अधीन अधिकारिता नहीं है, भ्रमित करने वाली है। संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 6 में यह कहा गया है कि किसी अवयस्क के मामले में अधिनियम किसी संरक्षक की नियुक्ति के लिए ऐसी किसी शक्ति को छीन नहीं सकता या कम नहीं कर सकता जो विधि द्वारा विधिमान्य है और जिससे कि अवयस्क संबंधित है। अतः यह दलील कि कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता अधिनियम की धारा 6 के अनुसार विवर्जित है, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है। (पैरा 7, 9, 10 और 11)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2012 की रिट याचिका सं. 24738.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका।

याची की ओर से

श्री वी. रामचन्द्र गौड़

प्रत्यर्थी की ओर से

श्री साहबजादा मीर मसूद अली खान

न्यायमूर्ति नौशाद अली – यह रिट याचिका प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा 2012 की ओ. पी. सं. 116 के साथ कुटुम्ब न्यायालय, हैदराबाद की कार्यवाहियों के विरुद्ध निषेध का अनुरोध करते हुए इस आधार पर फाइल की गई है कि मामले में कुटुम्ब न्यायालय को कोई अधिकारिता नहीं है और इसलिए ओ. पी. ग्राह्य नहीं है।

2. इस रिट याचिका के निपटान के लिए सुसंगत तथ्य इस आदेश में उल्लिखित किए जा रहे हैं ।

3. याची का विवाह प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ तारीख 20 फरवरी, 2006 को हुआ था । उनके विवाह से तारीख 19 जुलाई, 2007 को एक पुत्री का जन्म हुआ था जिसका नाम फहेम फातिमा रखा गया । यह कहा गया है कि बच्चे का नाम मुस्कान जायसवाल भी रखा गया था ।

4. यह कहा गया है कि विवाह के समय आवेदक ने धर्म परिवर्तन करके इस्लाम धर्म अपना लिया था । ऐसा प्रतीत होता है कि समय के साथ पक्षकारों के बीच 2008 से विभेद उत्पन्न हुआ । याची ने यह अभिकथन किया है कि उसे दहेज के लिए प्रताड़ित किया जाता था और तंग किया जाता था । कुछ समय के लिए वह प्रत्यर्थी सं. 2 को छोड़कर अपने माता-पिता के पास चली गई थी । वह पुनः 24 जून, 2008 से प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ रहने लगी थी । याची एक बार पुनः प्रत्यर्थी सं. 2 को छोड़कर चली गई और तारीख 28 जुलाई, 2008 को अपने माता-पिता के मकान पर चली आई । याची ने यह दावा किया है कि उसने तारीख 29 अगस्त, 2008 को पुनः हिन्दू धर्म अपना लिया था । इन परिस्थितियों में उसने अपने विवाह को अकृत और शून्य घोषित करने के लिए कुटुम्ब न्यायालय, नगर सिविल न्यायालय, हैदराबाद की फाइल पर 2012 की ओ. पी. सं. 27 फाइल की । प्रत्यर्थी सं. 2 ने भी अवयस्क बालक की अभिरक्षा के लिए 2012 की ओ. पी. सं. 116 फाइल की और 2012 की ओ. पी. सं. 116 में 2012 के अंतरिम आवेदन सं. 519 में तारीख 18 जुलाई, 2012 को कतिपय अंतरिम आदेश प्राप्त किया जिसमें प्रत्यर्थी सं. 2 को तारीख 19 जुलाई, 2012 को 4.00 बजे और 7.00 बजे अपराह्न के बीच एक दिन के लिए अवयस्क बालक की अभिरक्षा के लिए अनुज्ञात किया गया था । यह कहा गया है कि उक्त आदेश को 2013 की सी. आर. पी. सं. 3119 में आक्षेपित किया गया है ।

5. उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा यह रिट याचिका प्रतिषेध रिट जारी करके 2012 की ओ. पी. सं. 116 में कार्यवाहियों को रोकने के लिए फाइल की गई है ।

6. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री वी. रामचन्द्र गौड़ ने यह दलील दी है कि कुटुम्ब न्यायालय को ओ. पी. ग्रहण करने और प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा दावा किए गए अनुतोष को मंजूर करने के लिए कोई

अधिकारिता नहीं है। विद्वान् काउंसेल के अनुसार अवयस्क बालक की अभिरक्षा का मामला अनुतोष संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (जिसे आगे संक्षेप में “अधिनियम” कहा गया है) की धारा 6 के अन्तर्गत आता है जिसमें यह उपबंध किया गया है कि किसी संरक्षक की नियुक्ति के लिए शक्ति उस विधि द्वारा विनियमित होगी जिससे कि ऐसा अवयस्क संबंधित है। अतः विद्वान् काउंसेल के अनुसार कुटुम्ब न्यायालय को संरक्षकता के लिए किसी आवेदन पर विचार करने की अधिकारिता नहीं है।

7. मैं उक्त दलील से सहमत नहीं हूँ। कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता, कुटुम्ब न्यायालय, 1984 की धारा 7 में प्रदत्त की गई है। उक्त अधिनियम की धारा 7 में यह कहा गया है कि इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, (क) कुटुम्ब न्यायालय को इस स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों की बाबत, तत्समय प्रवृत्त, किसी विधि के अधीन किसी जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य पूर्ण अधिकारिता होगी और वह उसका प्रयोग करेगा; और (ख) कुटुम्ब न्यायालय के बारे में, ऐसी विधि के अधीन ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वह ऐसे क्षेत्र के लिए, जिस पर कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार है, यथास्थिति, जिसमें न्यायालय या अधीनस्थ सिविल न्यायालय है।

8. इस धारा में दिया गया स्पष्टीकरण यह उपबंध करता है कि इस उपधारा में निर्दिष्ट वाद और कार्यवाहियां निम्नलिखित प्रकृति के वाद और कार्यवाहियां हैं अर्थात् :-

“(क) से (च)

(छ) किसी व्यक्ति की संरक्षकता अथवा किसी अवयस्क की अभिरक्षा या उस तक पहुंच के संबंध में कोई वाद या कार्यवाही।”

9. उपर्युक्त उपबंध पूर्णतया स्पष्ट है और कुटुम्ब न्यायालय को उक्त अधिनियम के अधीन स्थापित कुटुम्ब न्यायालय को शक्ति प्रदत्त करता है और ऐसी समस्त शक्तियां प्रदत्त करता है जो ऐसे मामलों के संबंध में जिला न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य हैं और ऐसी शक्तियां कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य की गई हैं। कुटुम्ब न्यायालय को जिला न्यायालयों के समान रखा गया है और उन्हें विनिर्दिष्ट रूप से इन न्यायालयों द्वारा

प्रयोक्तव्य शक्तियां प्रदत्त की गई हैं । अतः कुटुम्ब न्यायालय को बालक की अभिरक्षा के लिए फाइल किए गए किसी आवेदन को ग्रहण करने की अधिकारिता है जैसा कि अधिनियम द्वारा अनुध्यात है ।

10. इसके अतिरिक्त जहां किसी कुटुम्ब न्यायालय को किसी क्षेत्र के लिए स्थापित किया गया है वहां कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी जिला न्यायालय या अधीनस्थ न्यायालय को मामलों पर विचार करने के लिए प्राधिकृत नहीं किया गया है । अतः अन्य न्यायालयों में निहित अधिकारिता उक्त अधिनियम की धारा 8 के आधार पर विवर्जित की गई है ।

11. उपर्युक्त उपबंधों से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि केवल कुटुम्ब न्यायालय प्रश्नगत मामले में विचार करने के लिए सक्षम है । याची के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि कुटुम्ब न्यायालय को अधिनियम की धारा 6 के अधीन अधिकारिता नहीं है, भ्रमित करने वाली है । संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 6 में यह कहा गया है कि किसी अवयस्क के मामले में अधिनियम किसी संरक्षक की नियुक्ति के लिए ऐसी किसी शक्ति को छीन नहीं सकता या कम नहीं कर सकता जो विधि द्वारा विधिमान्य है और जिससे कि अवयस्क संबंधित है । अतः यह दलील कि कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता अधिनियम की धारा 6 के अनुसार विवर्जित है, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

12. उपर्युक्त कारणों से यह रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है और इसलिए इसे तदनुसार खारिज किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । यह स्पष्ट किया जाता है कि यह न्यायालय मामले के गुण-दोष पर अपनी कोई राय व्यक्त नहीं कर रहा है ।

13. इस रिट याचिका के निपटान को दृष्टिगत करते हुए 2012 की डब्ल्यू. पी. एम. पी. सं. 31557, 43657 और 43658 तथा 2013 की 22298 अनावश्यक होने के रूप में खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश

बनाम

राज्य सूचना आयोग और एक अन्य

तारीख 8 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति तरुण अग्रवाल और न्यायमूर्ति अनिल कुमार शर्मा

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22) – धारा 2(1), (6) और 8 – अभ्यर्थी द्वारा सिविल सेवा उत्तर पुस्तिका की फोटो प्रति मांगा जाना – आयोग द्वारा धारा 8 का अवलंब लेते हुए प्रति देने से इनकार – विधिमान्यता – अधिनियम का उद्देश्य सूचना का अधिकतम प्रकटीकरण और प्रकटीकरण से न्यूनतम छूट सुनिश्चित करना है – आयोग उत्तर पुस्तिका की प्रति देने से इनकार नहीं कर सकता ।

आयोग के लोक सूचना अधिकारी ने प्रत्यर्थी सं. 2 को यह सूचना देते हुए उत्तर प्रेषित किया कि वह (प्रत्यर्थी सं. 2) पहले ही उत्तर पुस्तिका का निरीक्षण कर चुका है और चूंकि उत्तर पुस्तिका के मूल्यांकन का कोई उपबंध नहीं है इसलिए सुसंगत प्रश्नपत्र से संबंधित उत्तर पुस्तिका की फोटो प्रति प्रदत्त नहीं की जा सकती । प्रत्यर्थी सं. 2 ने लोक सूचना अधिकारी द्वारा दिए गए उत्तर से व्यथित होकर प्रथम अपील प्राधिकारी के समक्ष अपील फाइल की जो तारीख 29 नवंबर, 2012 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई । अतः लोक सेवा आयोग द्वारा यह सिविल रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अधिनियम का उद्देश्य सूचना का अधिकतम प्रकटीकरण और प्रकटीकरण से न्यूनतम छूट सुनिश्चित करना है । अधिनियम सरल, अधिकतम और सूचना के अधिक प्रभावी पहुंच को अधिक सुनिश्चित करने के लिए और संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन अनुदत्त सूचना के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए प्रभावी ढांचे को उपलब्ध कराता है । न्यायालय का यह मत है कि सूचना का यह अधिकार वाक्-स्वातंत्र की स्वतंत्रता से उद्भूत होता है और इससे देश के लोगों को प्रत्येक लोक

कार्य के बारे में जानने का अधिकार है जो लोक कृत्यकारियों द्वारा लोक रीति में किया गया है और सभी लोग संव्यवहारों की विशिष्टियों को जानने के हकदार हैं। अधिनियम के उपबंध यह स्पष्ट करते हैं कि किसी नागरिक को सूचना तक पहुंचने के लिए अधिकार है। इसके साथ ही साथ लोक प्राधिकारी इस बात के लिए आबद्ध है कि वह उपबंधित रीति में अभिलेख रखे और उपबंधित रीति में सूचना प्रदान करे। याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यदि राज्य सूचना आयोग के आदेश की पुष्टि की जाती है तो ऐसी ही मांगों की बाढ़ आ जाएगी और ऐसा निदेश अव्यवहार्य और प्रतिकूल रूप से उत्पादनीय होगा तथा प्रशासन की क्षमता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि आयोग के अधिकारी और कर्मचारी ऐसे गैर-उत्पादक कार्य को करने में लग जाएंगे और 75 प्रतिशत कर्मचारी अभ्यर्थियों को ऐसी सूचना प्रदान करने में लगे रहेंगे। परिणामतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उत्तर पुस्तिका की फोटो प्रति देने के बारे में निदेश पूर्णतया त्रुटिपूर्ण है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए। उत्तर पुस्तिका अधिनियम की धारा 2(च) के अधीन एक सूचना है और ऐसी सूचना को प्रदान किया जाना अपेक्षित है। अधिनियम यह उपबंध करता है कि सूचना का अधिकतम प्रकटीकरण होना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम के अधीन उपबंधित छूट परीक्षा लेने वाले निकाय को मूल्यांकित उत्तर पुस्तिका का प्रदाय करने के संबंध में उपलब्ध नहीं है। तथापि, उच्चतम न्यायालय ने यह निदेश दिया कि परीक्षा लेने वाला निकाय उत्तर पुस्तिका की फोटो प्रति का प्रदाय करते समय या प्रमाणित प्रति का प्रदाय करते समय परीक्षक के हस्ताक्षर या उसके नाम को छुपा सकता है। याची के आक्षेप स्वीकार किए जाने योग्य नहीं हैं और परिकल्पनाओं पर आधारित हैं। अभिलेख पर यह उपदर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि इस उत्तर पुस्तिका की प्रतियों का प्रदाय करने के लिए बहुत से अभ्यर्थियों द्वारा मांग की गई है और न ही अभिलेख पर यह उपदर्शित करने के लिए कुछ है कि वर्तमान में 75 प्रतिशत कर्मचारी इस कार्य में लगे हैं। इस न्यायालय की यह राय है कि ऐसी परिकल्पनाओं और अटकलों के आधार पर उत्तर पुस्तिका के प्रदाय से इनकार नहीं किया जा सकता। तदनुसार राज्य सूचना आयोग द्वारा जारी

निदेश में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है। (पैरा 7, 8, 9, 10, 11, 13 और 14)

अवलंबित निर्णय

पैरा

- [2011] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. (दांडिक) 2000 =
(2011) 8 एस. सी. सी. 497 :
केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और एक अन्य बनाम
आदित्य बंदोपाध्याय और अन्य ; 5, 7, 9, 14
- [1975] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 865 =
(1975) 4 एस. सी. सी. 428 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राज नारायण । 8

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2013 की रिट सी. सं. 69747.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

- याची की ओर से** सर्वश्री इन्द्रजीत सिंह यादव और
यू. एन. शर्मा
- प्रत्यर्थियों की ओर से** सर्वश्री एम. सी. चतुर्वेदी और
बलराम सिंह

रिट याचिका में निर्णय न्यायमूर्ति तरुण अग्रवाल और न्यायमूर्ति अनिल कुमार शर्मा ने दिया ।

निर्णय

प्रत्यर्थी सं. 2 ने लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश से यह अनुरोध करते हुए सूचना का अधिकार, अधिनियम 2005 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) के अधीन एक आवेदन फाइल किया था कि उसे लोक सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2007 के गणित के प्रथम प्रश्नपत्र की फोटो प्रति प्रदत्त की जाए । आयोग के लोक सूचना अधिकारी ने प्रत्यर्थी सं. 2 को यह सूचना देते हुए उत्तर प्रेषित किया कि वह (प्रत्यर्थी सं. 2) पहले ही उत्तर पुस्तिका का निरीक्षण कर चुका है और चूंकि उत्तर

पुस्तिका के मूल्यांकन का कोई उपबंध नहीं है इसलिए सुसंगत प्रश्नपत्र से संबंधित उत्तर पुस्तिका की फोटो प्रति प्रदत्त नहीं की जा सकती ।

2. प्रत्यर्थी सं. 2 ने लोक सूचना अधिकारी द्वारा दिए गए उत्तर से व्यथित होकर प्रथम अपील प्राधिकारी के समक्ष अपील फाइल की जो तारीख 29 नवंबर, 2012 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई ।

3. इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 ने राज्य सूचना आयोग के समक्ष द्वितीय अपील प्रस्तुत की जिसने मामले पर विचार करने के पश्चात् तारीख 12 नवंबर, 2013 को आदेश पारित करते हुए आयोग को गणित के प्रथम प्रश्नपत्र से संबंधित उत्तर पत्रक की फोटो प्रति प्रदान करने का निदेश दिया । आयोग ने उक्त आदेश से व्यथित होकर एक पुनर्विलोकन आवेदन फाइल किया था जो तारीख 28 नवंबर, 2013 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । आयोग ने उक्त आदेशों से व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका फाइल की है ।

4. याची की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री उमेश नारायण शर्मा जिनकी कि श्री इन्द्रजीत यादव द्वारा सहायता की गई और प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री बलराम सिंह जिनकी कि श्री केसरी नाथ त्रिपाठी द्वारा सहायता की गई, को सुना गया ।

5. वर्तमान रिट याचिका में अन्तर्वलित संविवाद यह है कि क्या आयोग उत्तर पुस्तिका की प्रमाणित फोटो प्रति या उसकी फोटो प्रति प्रदान करने के लिए आबद्ध है ? इस विवादक को उच्चतम न्यायालय द्वारा भी **केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और एक अन्य बनाम आदित्य बंदोपाध्याय और अन्य¹** वाले मामले में विनिश्चित किया गया है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहां परीक्षा लेने वाले निकाय द्वारा नियुक्त परीक्षक द्वारा उत्तर पुस्तिका का मूल्यांकन किया गया है वहां मूल्यांकन की गई उत्तर पुस्तिका अधिनियम के अधीन एक 'सूचना' है । मूल्यांकित उत्तर पुस्तिका अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (1) के खंड (क) से (ट) में उल्लिखित सूचना से निर्मुक्ति के किसी प्रवर्ग के अधीन नहीं आती है और परिणामतः परीक्षा लेने वाला निकाय ऐसी

¹ ए. आई. आर. 2011 एस. सी. (दांडिक) 2000 = (2011) 8 एस. सी. सी. 497.

सूचना प्रदान करने के लिए आबद्ध है और इसलिए आवेदक न केवल दस्तावेज/अभिलेख का निरीक्षण कर सकता है, अवेक्षा कर सकता है, उद्धरण ले सकता है अपितु उसकी प्रमाणित प्रतियां भी प्राप्त कर सकता है ।

6. उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त विनिश्चय में यह भी अभिनिर्धारित किया कि परीक्षा लेने वाला निकाय न्यासीय नातेदारी में मूल्यांकित उत्तर पुस्तिका को धारित नहीं कर सकता और इसलिए अधिनियम की धारा 8(ड) के अधीन छूट मूल्यांकित उत्तर पुस्तिका के निर्देश में परीक्षा लेने वाले निकाय को उपलब्ध नहीं थी ।

7. अधिनियम का उद्देश्य सूचना का अधिकतम प्रकटीकरण और प्रकटीकरण से न्यूनतम छूट सुनिश्चित करना है । अधिनियम सरल, अधिकतम और सूचना के अधिक प्रभावी पहुंच को अधिक सुनिश्चित करने के लिए और संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन अनुदत्त सूचना के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए प्रभावी ढांचे को उपलब्ध कराता है । उच्चतम न्यायालय ने **केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और एक अन्य बनाम आदित्य बंदोपाध्याय और अन्य¹** वाले मामले के उपर्युक्त विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया है कि सूचना का अधिकार एक महत्वपूर्ण अधिकार है । सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 का निर्वचन उस रीति में किया जाना चाहिए जिसमें कि सूचना को छुपाने के बजाय सूचना के प्रसार का उद्देश्य पूरा हो ।

8. हमारा यह मत है कि सूचना का यह अधिकार वाक्-स्वातंत्र की स्वतंत्रता से उद्भूत होता है और इससे देश के लोगों को प्रत्येक लोक कार्य के बारे में जानने का अधिकार है जो लोक कृत्यकारियों द्वारा लोक रीति में किया गया है और सभी लोग संव्यवहारों की विशिष्टियों को जानने के हकदार हैं जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राज नारायण²** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है ।

9. अधिनियम के उपबंध यह स्पष्ट करते हैं कि किसी नागरिक को

¹ ए. आई. आर. 2011 एस. सी. (दांडिक) 2000 = (2011) 8 एस. सी. सी. 497.

² ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 865 = (1975) 4 एस. सी. सी. 428.

सूचना तक पहुंचने के लिए अधिकार है। इसके साथ ही साथ लोक प्राधिकारी इस बात के लिए आबद्ध है कि वह उपबंधित रीति में अभिलेख रखे और उपबंधित रीति में सूचना प्रदान करे। उच्चतम न्यायालय ने **केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और एक अन्य बनाम आदित्य बंदोपाध्याय और अन्य¹** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि मूल्यांकित उत्तर पुस्तिका अधिनियम की धारा 2(च) के अधीन एक सूचना है और परिणामतः ऐसी सूचना मांगे जाने पर उसे प्रदत्त किया जाना आवश्यक है। किसी आवेदक को लोक प्राधिकारी द्वारा धारित और उसके नियंत्रण के अधीन ऐसी सूचना को प्राप्त करने का अधिकार है।

10. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यदि राज्य सूचना आयोग के आदेश की पुष्टि की जाती है तो ऐसी ही मांगों की बाढ़ आ जाएगी और ऐसा निदेश अव्यवहार्य और प्रतिकूल रूप से उत्पादनीय होगा तथा प्रशासन की क्षमता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि आयोग के अधिकारी और कर्मचारी ऐसे गैर-उत्पादक कार्य को करने में लग जाएंगे और 75 प्रतिशत कर्मचारी अभ्यर्थियों को ऐसी सूचना प्रदान करने में लगे रहेंगे। परिणामतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उत्तर पुस्तिका की फोटो प्रति देने के बारे में निदेश पूर्णतया त्रुटिपूर्ण है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए।

11. जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने **केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और एक अन्य बनाम आदित्य बंदोपाध्याय और अन्य¹** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि अभ्यर्थी को अधिनियम के अधीन सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। उत्तर पुस्तिका अधिनियम की धारा 2(च) के अधीन एक सूचना है और ऐसी सूचना को प्रदान किया जाना अपेक्षित है। अधिनियम यह उपबंध करता है कि सूचना का अधिकतम प्रकटीकरण होना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम के अधीन उपबंधित छूट परीक्षा लेने वाले निकाय को मूल्यांकित उत्तर पुस्तिका का प्रदाय करने के संबंध में उपलब्ध नहीं है। तथापि, उच्चतम न्यायालय ने यह निदेश दिया कि परीक्षा लेने वाला निकाय उत्तर पुस्तिका की फोटो

¹ ए. आई. आर. 2011 एस. सी. (दांडिक) 2000 = (2011) 8 एस. सी. सी. 497.

प्रति का प्रदाय करते समय या प्रमाणित प्रति का प्रदाय करते समय परीक्षक के हस्ताक्षर या उसके नाम को छुपा सकता है ।

12. वर्तमान मामले में राज्य सूचना आयोग ने उत्तर पुस्तिका के प्रदाय के लिए आयोग को निदेश देते समय इस पहलू पर सावधानी बरती है ।

13. याची के आक्षेप स्वीकार किए जाने योग्य नहीं हैं और परिकल्पनाओं पर आधारित हैं । अभिलेख पर यह उपदर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि इस उत्तर पुस्तिका की प्रतियों का प्रदाय करने के लिए बहुत से अभ्यर्थियों द्वारा मांग की गई है और न ही अभिलेख पर यह उपदर्शित करने के लिए कुछ है कि वर्तमान में 75 प्रतिशत कर्मचारी इस कार्य में लगे हैं । इस न्यायालय की यह राय है कि ऐसी परिकल्पनाओं और अटकलों के आधार पर उत्तर पुस्तिका के प्रदाय से इनकार नहीं किया जा सकता ।

14. अतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उच्चतम न्यायालय द्वारा **केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और एक अन्य बनाम आदित्य बंदोपाध्याय और अन्य¹** वाले मामले में दिए गए निर्णय को दृष्टिगत करते हुए परीक्षा लेने वाला निकाय न्यासीय नातेदारी में उत्तर पुस्तिका की प्रति देने से इनकार नहीं कर सकता और उसे अधिनियम की धारा 1(ड) के अधीन छूट उपलब्ध नहीं है । तदनुसार राज्य सूचना आयोग द्वारा जारी निदेश में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है ।

15. ऊपर उल्लिखित कारणों से यह रिट याचिका खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

¹ ए. आई. आर. 2011 एस. सी. (दांडिक) 2000 = (2011) 8 एस. सी. सी. 497.

मीरा शर्मा

बनाम

राज्य और अन्य

तारीख 24 मई, 2013

न्यायमूर्ति मुज़फ्फर हुसैन अत्तार और न्यायमूर्ति बंसी लाल भट्ट

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 – धारा 103 [सपटित तारीख 27 जून, 1979 के एस. आर. ओ. सं. 347 द्वारा अधिसूचित कानूनी नियम, 1979] – कोशकीट पालन सहायक के पद पर नियुक्ति – अर्हता – एक ही डिग्री के लिए दो फायदे देकर अतिरिक्त अंक दिया जाना – विधिमान्यता – एक ही डिग्री/प्रमाणपत्र के लिए दो फायदे नहीं दिए जा सकते – सेवा-न्यायशास्त्र में एक प्रमाणपत्र के लिए दो बार अंक दिया जाना मान्य नहीं है – अतः ऐसा फायदा तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि विशिष्ट नियम एक डिग्री/प्रमाणपत्र के लिए दोहरे अंक दिए जाने के लिए उपबंध न करता हो ।

अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 3 ने तारीख 24 अक्टूबर, 1997 के विज्ञापन सं. 09/1997 के जवाब में आवेदन किए थे और कोशकीट पालन सहायक के पद पर चयन और नियुक्ति के लिए आवेदन पर विचार किए जाने की ईप्सा की थी । प्रत्यर्थी सं. 3 का चयन हुआ था और उसे वर्ष 2003 में कोशकीट पालन सहायक के पद पर नियुक्त किया गया था । अपीलार्थी ने संजय रोमित्र के साथ अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर प्रत्यर्थी सं. 3 के चयन/नियुक्ति को आक्षेपित किया कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पास विज्ञापन सूचना तथा तारीख 27 जून, 1979 के एस. आर. ओ. सं. 347 द्वारा अधिसूचित कानूनी नियमों में विहित अर्हता नहीं थी जिसके अधीन कोशकीट पालन सहायक के पद पर सीधी भर्ती के लिए न्यूनतम अर्हता केन्द्रीय रेशम बोर्ड द्वारा मान्यताप्राप्त किसी संस्था से स्नातकोत्तर डिप्लोमा सहित विज्ञान स्नातक (प्राकृतिक विज्ञान) विहित की गई है । प्रत्यर्थी सं. 3 को 30 अतिरिक्त अंक दिए गए थे जबकि वह इसके लिए हकदार नहीं थी । उक्त से व्यथित होकर अपीलार्थी ने रिट

याचिका फाइल की थी जो खारिज की गई । अतः यह लेटर्स पेटेन्ट अपील फाइल की गई । अपील तदनुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वीकृततः प्रत्यर्थी सं. 3 के पास प्राकृतिक विज्ञान और विज्ञान स्नातक की अर्हता है किन्तु उसने केन्द्रीय रेशम बोर्ड द्वारा मान्यता-प्राप्त किसी संस्था से स्नातकोत्तर डिप्लोमा प्राप्त नहीं किया है । प्रत्यर्थी सं. 3 की स्नातकोत्तर डिग्री भर्ती नियमों के लिए विहित आधारभूत अर्हता के रूप में समझी जाएगी क्योंकि स्नातकोत्तर डिग्री स्नातकोत्तर डिप्लोमा के मुकाबले उच्चतर अर्हता है जो कि “न्यूनतम विहित अर्हता” है । अतः प्रत्यर्थी सं. 3 की स्नातकोत्तर डिग्री आधारभूत अर्हता के रूप में समझी जाएगी और इसलिए आधारभूत अर्हता के लिए नियत 50 अंकों में से ऐसी डिग्री के लिए नियत अंकों पर ही विचार किया जाएगा । इस मामले के तथ्यों में प्रत्यर्थी सं. 3 को उच्चतर अर्हता रखने के लिए कोई अतिरिक्त फायदा नहीं दिया जा सकता । किसी डिग्री प्रमाणपत्र को आधारभूत अर्हता के रूप में समझा जाना और अभ्यर्थी को ऐसी डिग्री के आधार पर अंक दिया जाना अयुक्तियुक्त समझा जाएगा और तत्पश्चात् उसे उच्चतर अर्हता मानकर ऐसी डिग्री के लिए अतिरिक्त अंक देना अयुक्तियुक्त होगा । एक डिग्री/प्रमाणपत्र के लिए दो फायदे नहीं दिए जा सकते । सेवा न्यायशास्त्र में एक प्रमाणपत्र के लिए दो बार अंक दिया जाना मान्य नहीं है और इसलिए ऐसा फायदा तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि विशिष्ट नियम एक डिग्री/प्रमाणपत्र के लिए दोहरे अंक दिए जाने के लिए विहित न करता हो । सेवा चयन बोर्ड ने प्रत्यर्थी सं. 3 को स्नातकोत्तर डिग्री के लिए अवैध रूप से अतिरिक्त फायदा दिया है । इस मामले के तथ्यों में प्रत्यर्थी सं. 3 को 30 अतिरिक्त अंक नहीं दिए जा सकते । अतः प्रत्यर्थी सं. 3 को दिए गए 30 अतिरिक्त अंक उसकी योग्यता सूची में के कुल अंकों में से निरस्त किए जाते हैं । उपर्युक्त पृष्ठभूमि में प्रत्यर्थी सं. 3 का चयन अपास्त किए जाने की आवश्यकता है । तथापि, यह न्यायालय इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता कि प्रत्यर्थी सं. 3 को वर्ष 2003 में नियुक्त किया गया है । यह किसी का भी पक्षकथन नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने चयन बोर्ड से कपट करके नियुक्ति प्राप्त की है । इन सभी वर्षों के लिए कोशकीट पालन सहायक के पद पर अन्य सेवा फायदों की स्थिति जिसमें इन सभी वर्षों के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 को वेतन देना सम्मिलित है,

उसके घरेलू जीवन के लिए है। यह तथ्य भी कि प्रत्यर्थी सं. 3 की अधिक आयु हो गई है, इस न्यायालय को उस रीति में अनुतोष प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है जिससे कि न्याय किया जा सके। परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय यह उचित समझता है कि इस स्तर पर प्रत्यर्थी सं. 3 की नियुक्ति को विक्षुब्ध न किया जाए क्योंकि यह उसके लिए और उसके कुटुम्ब के लिए कठिनाईपूर्ण होगा। चूंकि अपीलार्थी को वर्ष 2003 में नियुक्ति के उसके विधिक अधिकार से वंचित किया गया है इसलिए शासकीय प्रत्यर्थियों को यह निदेश देना उचित होगा कि वे अपीलार्थी को उस तारीख से जिस पर प्रत्यर्थी सं. 3 को नियुक्त किया गया है, मीमांसात्मक ज्येष्ठता का फायदा दें और कोशकीट पालन सहायक के प्रवर्ग में प्रत्यर्थी सं. 3 से अपीलार्थी को ज्येष्ठ मानें। (पैरा 12, 13, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	2010 (2) जे. के. जे. (एच. सी.) : शाहीना मसररत (सुश्री) बनाम राज्य और अन्य ;	18
[2007]	(2007) 1 एस. सी. सी. 257 : उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम देश राज ;	8
[2007]	(2007) 4 एस. सी. सी. 54 : अशोक कुमार सोनकर बनाम भारत संघ और अन्य ;	8
[2002]	2002 का मामला सं. 2194 और 2200, तारीख 13 मार्च, 2002 को विनिश्चित : ज्योति के. के. बनाम केरल लोक सेवा आयोग।	4
अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की लेटर्स पेटेन्ट अपील एस. डब्ल्यू. सं. 27.		

लेटर्स पेटेन्ट अपील नियमों के खंड 10 के अधीन अपील।

अपीलार्थी की ओर से

श्री एफ. ए. नातनू

प्रत्यर्थियों की ओर से

श्रीमती एस. हकीम, सर्वश्री एस. के.

शुक्ला, राहिल राजा और अभिनव शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मुज़फ्फर हुसैन अत्तार ने दिया ।

न्या. अत्तार – अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 3 ने तारीख 24 अक्टूबर, 1997 के विज्ञापन सं. 09/1997 के जवाब में आवेदन किए थे और कोशकीट पालन सहायक के पद पर चयन और नियुक्ति के लिए आवेदन पर विचार किए जाने की ईप्सा की थी । प्रत्यर्थी सं. 3 का चयन हुआ था और उसे वर्ष 2003 में कोशकीट पालन सहायक के पद पर नियुक्त किया गया था । अपीलार्थी ने संजय रोमित्र के साथ अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर प्रत्यर्थी सं. 3 के चयन/नियुक्ति को आक्षेपित किया कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पास विज्ञापन सूचना तथा तारीख 27 जून, 1979 के एस. आर. ओ. सं. 347 द्वारा अधिसूचित कानूनी नियमों (जिन्हें आगे संक्षेप में ‘1979 के नियम’ कहा गया है) में विहित अर्हता नहीं थी जिसके अधीन कोशकीट पालन सहायक के पद पर सीधी भर्ती के लिए न्यूनतम अर्हता केन्द्रीय रेशम बोर्ड द्वारा मान्यताप्राप्त किसी संस्था से स्नातकोत्तर डिप्लोमा सहित विज्ञान स्नातक (प्राकृतिक विज्ञान) विहित की गई है । प्रत्यर्थी सं. 3 को 30 अतिरिक्त अंक दिए गए थे जबकि वह इसके लिए हकदार नहीं थी ।

2. प्रत्यर्थी सं. 3 ने अपीलार्थी की रिट याचिका का जवाब/आक्षेप फाइल किए थे जिसमें यह कहा गया था कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पास विहित अर्हता थी । सेवा चयन बोर्ड ने भी वह मानदंड प्रकट किया है जिसका कोशकीट पालन सहायक के चयन के लिए अनुसरण किया गया था । सेवा चयन बोर्ड ने निम्नलिखित मानदंड का अनुसरण किया है :-

“आधारभूत अर्हता के लिए अधिमान – 50 अंक

उच्चतर अर्हता के लिए और अनुभव के लिए अधिमान – 30 अंक

साक्षात्कार – 20 अंक ।”

3. विद्वान् रिट न्यायालय ने तारीख 30 नवंबर, 2012 के निर्णय द्वारा रिट याचिका खारिज कर दी । अपीलार्थी ने जो रिट याचिका में याची सं. 1 था, इस लेटर्स पेटेंट अपील द्वारा उक्त निर्णय को आक्षेपित किया है ।

4. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री एफ. ए. नातनू ने यह दलील दी है कि यदि यह उपधारित कर लिया जाए कि स्नातकोत्तर डिग्री जो प्रत्यर्थी सं. 5 के पास है, केन्द्रीय रेशम बोर्ड द्वारा मान्यताप्राप्त किसी संस्था से स्नातकोत्तर डिप्लोमा की अधिकतम अर्हता है, तब भी अनुसरण किए गए मानदंड के निबंधनों में उक्त उच्चतर अर्हता आधारभूत अर्हता के रूप में समझी जाएगी और प्रत्यर्थी सं. 3 को कोई अतिरिक्त फायदा नहीं दिया जा सकता। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 3 को एक ही प्रमाणपत्र के संबंध में दो फायदे दिए गए हैं अर्थात् इसे आधारभूत अर्हता के रूप में माना गया है और उसके पश्चात् उसे उच्चतर अर्हता के रूप में माना गया है और इस प्रकार प्रत्यर्थी सं. 3 को 30 अतिरिक्त अंक दिए गए हैं। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी के पास पद के लिए विहित न्यूनतम अर्हता होने के साथ-साथ प्राकृतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री भी है जो कि एक उच्चतर अर्हता है, तथापि, उसे इस संबंध में कोई अंक नहीं दिए गए हैं। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि सेवा चयन बोर्ड द्वारा अपने आक्षेपों/जवाब शपथपत्र में प्रकट की गई योग्यता स्थिति को दृष्टिगत करते हुए यदि प्रत्यर्थी सं. 3 को दिए गए 30 अतिरिक्त अंक कुल प्राप्त अंकों में से निकाल दिए जाते हैं और अपीलार्थी को 30 अतिरिक्त अंक दिए जाते हैं तो अपीलार्थी को ही कोशकीट पालन सहायक के पद पर उस तारीख से चयनित और नियुक्त किया जाएगा जिस तारीख से प्रत्यर्थी सं. 3 को पद पर चयनित/नियुक्त किया गया है। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि विद्वान् रिट न्यायालय ने गलत रूप से **ज्योति के. के. बनाम केरल लोक सेवा आयोग**¹ वाले मामले के निर्णय का अवलंब लिया है क्योंकि उक्त मामले में एक ऐसा विनिर्दिष्ट उपबंध था जिसके अधीन यह घोषित किया गया था कि उसी विषय में उच्चतर अर्हता रखने वाले व्यक्ति को नियमों द्वारा विहित निम्नतर अर्हता धारित करने वाला उपधारित किया जाएगा। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि वर्तमान मामले में ऐसा कोई नियम मौजूद नहीं है और इसलिए उक्त निर्णय का अवलंब नहीं लिया जा सकता।

5. श्री नातनू द्वारा यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी को तारीख 28 फरवरी, 2012 के आदेश द्वारा कोशकीट पालन सहायक के पद पर

¹ 2002 का मामला सं. 2194 और 2200, तारीख 13 मार्च, 2002 को विनिश्चित।

प्रोन्नति द्वारा नियुक्त कर दिया गया है ।

6. सेवा चयन बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री एस. के. शुक्ला द्वारा ऋजुतापूर्वक यह बताया गया है कि उस मानदंड में जिसका बोर्ड द्वारा कोशकीट पालन सहायक के पद पर चयन करने के लिए अनुसरण किया गया था, यह उल्लिखित किया गया है कि केवल विशिष्ट उच्चतर अर्हता के मामले में 30 अतिरिक्त अंक दिए जाएंगे । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि इसमें केवल यह कहा गया है कि उच्चतर अर्हता के मामले में 30 अतिरिक्त अंकों का फायदा दिया जाएगा ।

7. प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से उपस्थित काउंसेल श्री अभिनव शर्मा ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 3 को उसकी योग्यता के आधार पर कोशकीट पालन सहायक के पद पर चयनित और नियुक्त किया गया है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 3 को साक्षात्कार में प्रत्यर्थी के मुकाबले कम अंक मिले थे । इसके पश्चात् विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यदि यह उपधारित भी कर लिया जाए और प्रत्यर्थी सं. 3 के कुल अंकों में से 30 अतिरिक्त अंक वापस ले लिए जाएं या कम कर लिए जाएं तो भी सेवा चयन बोर्ड द्वारा अपने आक्षेपों में उपदर्शित योग्यता स्थिति को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी का चयन नहीं हो सकता क्योंकि उसकी योग्यता प्रत्यर्थी सं. 3 के मुकाबले कम है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि पद की अपेक्षा को देखते हुए उच्चतर अर्हता होनी चाहिए और चूंकि इस मामले में कोशकीट पालन सहायक का पद है इसलिए केवल कोशकीट पालन में उच्चतर अर्हता ही अतिरिक्त फायदा दे सकती है । अनुकल्पतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यदि न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 को गलत रूप से अतिरिक्त अंक दिए गए हैं और अपीलार्थी की योग्यता स्थिति में अतिरिक्त अंक जोड़े जाने चाहिए तो भी न्याय हित में और साम्यापूर्ण अधिकारिता के प्रयोग में प्रत्यर्थी सं. 3 का चयन/नियुक्ति संरक्षित होगी क्योंकि उसे वर्ष 2003 में नियुक्त किया गया है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि शासकीय प्रत्यर्थियों को यह निदेश जारी किया जा सकता है कि वे उस तारीख से अपीलार्थी को ज्येष्ठता प्रदान करें जिस तारीख से प्रत्यर्थी सं. 3 को नियुक्त किया गया है और इन परिस्थितियों में अपीलार्थी को कोशकीट पालन सहायक के वर्ग में प्रत्यर्थी सं. 3 से ज्येष्ठ माना जाए । प्रत्यर्थी सं.

3 के विद्वान् काउंसेल ने कोशकीट पालन सहायक के प्रवर्ग में प्रत्यर्थी सं. 3 से अपीलार्थी को ज्येष्ठ मानने के लिए सहमति दी है ।

8. प्रत्यर्थी सं. 3 के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का निर्देश किया है :-

(i) उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम देश राज¹,

(ii) अशोक कुमार सोनकर बनाम भारत संघ और अन्य² ।

9. 1979 के नियमों के साथ संलग्न अनुसूची के प्रवर्ग ख के खंड (III) के अधीन कोशकीट पालन सहायक के पद की सीधी भर्ती के लिए न्यूनतम अर्हता और भर्ती की रीति इस प्रकार विहित की गई है :-

<p>“III ख. कोशकीट पालन सहायक</p> <p>280-520</p>	<p>केन्द्रीय रेशम बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त किसी संस्था से स्नातकोत्तर डिप्लोमा सहित प्राकृतिक विज्ञान में विज्ञान स्नातक</p>	<p>सीधी भर्ती द्वारा 50 प्रतिशत और निम्नलिखित रीति में वर्ग V-क से प्रोन्नति द्वारा 50 प्रतिशत :-</p> <p>1. कनिष्ठ कोशकीट पालन प्रशिक्षण के साथ 10 वर्ष के अनुभव सहित मैट्रिक</p> <p>2. कनिष्ठ कोशकीट पालन प्रशिक्षण के साथ 7 वर्ष के अनुभव सहित स्नातक</p> <p>3. तीन वर्ष के अनुभव सहित कोशकीट पालन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा के साथ स्नातक ।”</p>
---	--	--

10. सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र को दृष्टिगत करते हुए प्रत्यर्थी सं. 3 की स्नातकोत्तर डिग्री, स्नातकोत्तर डिप्लोमा के मुकाबले उच्चतर अर्हता है और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 3 को विज्ञान स्नातक (प्राकृतिक विज्ञान) परीक्षा पारित किए जाने के कारण पात्र माना जाएगा और उसकी अभ्यर्थिता को बोर्ड द्वारा ठीक ही ग्रहण किया गया है ।

11. महत्वपूर्ण विवाद्यक जिस पर इस न्यायालय द्वारा विचार

¹ (2007) 1 एस. सी. सी. 257.

² (2007) 4 एस. सी. सी. 54.

किया जाना है, यह है कि क्या प्रत्यर्थी सं. 3 की स्नातकोत्तर अर्हता उसे आधारभूत अर्हता और उच्चतर अर्हता के रूप में फायदा देने के लिए हकदार बनाएगी और प्राकृतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर विज्ञान की डिग्री जो अपीलार्थी के पास है, उसे अतिरिक्त अंक प्राप्त करने के लिए हकदार बनाएगी। योग्यता स्थिति जो सेवा चयन बोर्ड द्वारा अपने आक्षेपों में प्रकट की गई है, इस प्रकार है :-

	“शैक्षिक अर्हता	तकनीकी अर्हता	प्राप्तांक	50 अंकों का फायदा	अतिरिक्त अंक	साक्षात्कार में अंक	योग
याची सं. 1	विज्ञान स्नातक/ विज्ञान स्नातकोत्तर	कोशकीट पालन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा	623/1100	28.332	—	13.66	41.98
याची सं. 2	विज्ञान स्नातक/ एल-एल. बी.	यथोक्त	717/1100	32.59	—	15.66	48.25
प्रत्यर्थी सं. 2	विज्ञान स्नातक	कोशकीट पालन में विज्ञान स्नातकोत्तर	1069/1650	32.39	30.00	11.33	73.72 अंक 1'

12. स्वीकृततः प्रत्यर्थी सं. 3 के पास प्राकृतिक विज्ञान और विज्ञान स्नातक की अर्हता है किन्तु उसने केन्द्रीय रेशम बोर्ड द्वारा मान्यताप्राप्त किसी संस्था से स्नातकोत्तर डिप्लोमा प्राप्त नहीं किया है। प्रत्यर्थी सं. 3 की स्नातकोत्तर डिग्री भर्ती नियमों के लिए विहित आधारभूत अर्हता के रूप में समझी जाएगी क्योंकि स्नातकोत्तर डिग्री स्नातकोत्तर डिप्लोमा के मुकाबले उच्चतर अर्हता है जो कि “न्यूनतम विहित अर्हता” है। अतः प्रत्यर्थी सं. 3 की स्नातकोत्तर डिग्री आधारभूत अर्हता के रूप में समझी जाएगी और इसलिए आधारभूत अर्हता के लिए नियत 50 अंकों में से ऐसी डिग्री के लिए नियत अंकों पर ही विचार किया जाएगा। इस मामले के तथ्यों में प्रत्यर्थी सं. 3 को उच्चतर अर्हता रखने के लिए कोई अतिरिक्त फायदा नहीं दिया जा सकता। किसी डिग्री प्रमाणपत्र को आधारभूत अर्हता के रूप में समझा जाना और अभ्यर्थी को ऐसी डिग्री के आधार पर

अंक दिया जाना अयुक्तियुक्त समझा जाएगा और तत्पश्चात् उसे उच्चतर अर्हता मानकर ऐसी डिग्री के लिए अतिरिक्त अंक देना अयुक्तियुक्त होगा। एक डिग्री/प्रमाणपत्र के लिए दो फायदे नहीं दिए जा सकते। सेवान्यायशास्त्र में एक प्रमाणपत्र के लिए दो बार अंक दिया जाना मान्य नहीं है और इसलिए ऐसा फायदा तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि विशिष्ट नियम एक डिग्री/प्रमाणपत्र के लिए दोहरे अंक दिए जाने के लिए विहित न करता हो।

13. सेवा चयन बोर्ड ने प्रत्यर्थी सं. 3 को स्नातकोत्तर डिग्री के लिए अवैध रूप से अतिरिक्त फायदा दिया है। इस मामले के तथ्यों में प्रत्यर्थी सं. 3 को 30 अतिरिक्त अंक नहीं दिए जा सकते। अतः प्रत्यर्थी सं. 3 को दिए गए 30 अतिरिक्त अंक उसकी योग्यता सूची में के कुल अंकों में से निरस्त किए जाते हैं।

14. अगला विवाद्यक जिस पर विचार किया जाना, यह है कि क्या अपीलार्थी द्वारा धारित प्राकृतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री के आधार पर अतिरिक्त फायदा दिया जाएगा। सेवा चयन बोर्ड द्वारा अनुसरण किए गए मानदंडों से यह उपदर्शित होता है कि उच्चतर अर्हता के लिए 30 अंकों का फायदा दिया जाएगा। यह नहीं कहा जा सकता कि उच्चतर अर्हता का फायदा केवल तभी दिया जा सकता है जब अभ्यर्थी ने केवल कोशकीट पालन विषय में उच्चतर अर्हता प्राप्त की हो।

15. श्री शुक्ला ने ऋजुतापूर्वक इस स्थिति को स्वीकार करते हुए यह कहा है कि सेवा चयन बोर्ड ने “उच्चतर अर्हता के लिए फायदा” पद को स्पष्ट नहीं किया है।

16. चूंकि नियमों द्वारा विहित सीधी भर्ती के लिए न्यूनतम अर्हता स्नातकोत्तर डिप्लोमा सहित प्राकृतिक विज्ञान में विज्ञान स्नातक है इसलिए अपीलार्थी द्वारा सेवा चयन बोर्ड द्वारा अनुसरण किए गए मानदंड को दृष्टिगत करते हुए प्राकृतिक विज्ञान विषय में प्राप्त की गई स्नातकोत्तर डिग्री के लिए अतिरिक्त फायदा दिया जाएगा।

17. यदि उपर्युक्त अभिकथित विधिक स्थिति के आधार पर अपीलार्थी द्वारा और प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा प्राप्त कुल अंकों को विचार में लेकर संगणना की जाए तो अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं. 3 के मुकाबले बेहतर योग्यता प्राप्त

की है और इस स्थिति को पक्षकारों के विद्वान् काउंसिल द्वारा स्वीकार किया गया है ।

18. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में प्रत्यर्थी सं. 3 का चयन अपास्त किए जाने की आवश्यकता है । तथापि, यह न्यायालय इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता कि प्रत्यर्थी सं. 3 को वर्ष 2003 में नियुक्त किया गया है । यह किसी का भी पक्षकथन नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने चयन बोर्ड से कपट करके नियुक्ति प्राप्त की है । इन सभी वर्षों के लिए कोशकीट पालन सहायक के पद पर अन्य सेवा फायदों की स्थिति जिसमें इन सभी वर्षों के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 को वेतन देना सम्मिलित है, उसके घरेलू जीवन के लिए है । यह तथ्य भी कि प्रत्यर्थी सं. 3 की अधिक आयु हो गई है, इस न्यायालय को उस रीति में अनुतोष प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है जिससे कि न्याय किया जा सके । इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने शाहीना मसरत (सुश्री) बनाम राज्य और अन्य¹ वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :-

“39. तदनुसार यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि यद्यपि स्वीकृत तथ्य स्थिति में प्राइवेट-प्रत्यर्थी आर-ई-टी के रूप में चयन/नियुक्ति के समय आयु वर्जित हो गया था, तथापि, इसे उपर्युक्त अभिकथित कारणों से अपास्त नहीं किया जा सकता और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्राइवेट-प्रत्यर्थी को विधिमान्य रूप से नियुक्त किया गया था । हम इस बात के प्रति सजग हैं कि विधि के अनुसार न्याय किया जाना चाहिए । तथापि, जहां कार्यवाहियों का परिणाम कठोर होने की संभावना हो वहां साम्या या दया विधि के अनुसार न्याय की संकल्पना के भाग के रूप में सम्मिलित हो जाते हैं ।”

19. उपर्युक्त परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए हम यह उचित समझते हैं कि इस स्तर पर प्रत्यर्थी सं. 3 की नियुक्ति को विक्षुब्ध न किया जाए क्योंकि यह उसके लिए और उसके कुटुम्ब के लिए कठिनाईपूर्ण होगा । चूंकि अपीलार्थी को वर्ष 2003 में नियुक्ति के उसके विधिक अधिकार से वंचित किया गया है इसलिए शासकीय प्रत्यर्थियों को यह

¹ 2010 (2) जे. के. जे. (एच. सी.).

निदेश देना उचित होगा कि वे अपीलार्थी को उस तारीख से जिस पर प्रत्यर्थी सं. 3 को नियुक्त किया गया है, मीमांसात्मक ज्येष्ठता का फायदा दें और कोशकीट पालन सहायक के प्रवर्ग में प्रत्यर्थी सं. 3 से अपीलार्थी को ज्येष्ठ मानें ।

20. उपर्युक्त कारणों से इस अपील को निम्नलिखित रीति में निपटाया जाता है :-

(i) 2003 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 2407 में तारीख 30 नवंबर, 2012 को पारित आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है ।

(ii) प्रत्यर्थी सं. 3 की नियुक्ति यथावत् रहेगी ।

(iii) प्रत्यर्थी सं. 1 को यह निदेश दिया जाता है कि वह अपीलार्थी को उस तारीख से जिस तारीख से प्रत्यर्थी सं. 3 की उक्त पद पर नियुक्ति की गई है, कोशकीट पालन सहायक के पद पर मीमांसात्मक ज्येष्ठता प्रदान करें । ज्येष्ठता मीमांसात्मक आधार पर दी जाएगी । अपीलार्थी किसी धनीय फायदे की हकदार नहीं होगी क्योंकि उसने उपर्युक्त अवधि के दौरान उक्त पद पर कार्य नहीं किया था ।

(iv) प्रत्यर्थी सं. 1 समुचित आदेश पारित करेगा और अपीलार्थी को कोशकीट पालन सहायक की ज्येष्ठता सूची में प्रत्यर्थी सं. 3 से ऊपर रखेगा । यह भी उल्लेख किया जाता है कि यदि अपीलार्थी को मीमांसात्मक ज्येष्ठता दी जाती है और यदि उससे प्रत्यर्थी सं. 3 के सिवाय अन्य कोई व्यक्ति प्रभावित होता है तो ऐसे व्यक्ति को सूचना दी जाएगी और सुनवाई का अवसर दिया जाएगा ।

अपील तदनुसार निपटाई गई ।

मह.

भारत संघ और अन्य

बनाम

बाबू सिंह

तारीख 30 मई, 2013

न्यायमूर्ति मोहम्मद याकूब मीर और न्यायमूर्ति धीरज सिंह ठाकुर

सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968 – धारा 11(2) और सीमा सुरक्षा बल नियम, 1969 का नियम 22(2) और 177 – सीमा सुरक्षा बल में कांस्टेबल – अनुपस्थिति के आधार पर बर्खास्तगी – सेवक द्वारा यह अभिवचन किया जाना कि उसने अशान्ति के कारण अपने कुटुम्ब को स्थानांतरित करने के लिए मौखिक अनुज्ञा ली थी – सेवक को कारण बताओ सूचना के साथ उसके प्रतिकूल रिपोर्टें न भेजी जानी – सेवक को बर्खास्त करना विधिविरुद्ध है तथापि, विभाग नए सिरे से कार्यवाही कर सकता है ।

तारीख 15 मई, 2009 के आक्षेपित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी की याचिका मंजूर की गई है । तारीख 18 अक्टूबर, 1999 का खारिजी आदेश जो प्रत्यर्थी के विरुद्ध था, अपास्त किया गया है । अपीलार्थियों को रिट याची (हमारे समक्ष प्रत्यर्थी) को सभी पारिणामिक फायदों सहित बहाल करने का निदेश दिया गया है । तथापि, अपीलार्थियों को नए सिरे से जांच कराने के लिए स्वतंत्रता दी गई है । उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर खंड 12 के अधीन यह लेटर्स पेटेन्ट अपील फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी ने प्रस्तावित दंड अर्थात् तारीख 16 सितंबर, 1999 की कारण बताओ सूचना के जवाब में रजिस्ट्रीकृत डाक से एक लिफाफे में अपना अभ्यावेदन भेजा था और यह अभिलेख पर पेश किए जाने के कारण उपलब्ध है । लिफाफे से यह प्रकट होता है कि अभ्यावेदन तारीख 15 अक्टूबर, 1999 को भेजा गया था जो अपीलार्थी-कमांडेन्ट को तारीख 21 अक्टूबर, 1999 को प्राप्त हुआ था । जबकि कारण बताओ सूचना के अनुसार प्रत्यर्थी से अपना जवाब तारीख 15 अक्टूबर, 1999 को या इससे

पूर्व प्रस्तुत करने की ईप्सा की गई थी और सेवा समाप्ति का आदेश तारीख 18 अक्टूबर, 1999 को पारित किया गया था जिसका यह अर्थ है कि कारण बताओ सूचना का जवाब अपीलार्थी-कमांडेन्ट के पास तारीख 18 अक्टूबर, 1999 को सेवा समाप्ति का आदेश पारित करने के पूर्व पहुंच चुका था। अभिलेख से यह उपदर्शित नहीं होता है कि कारण बताओ सूचना कब भेजी गई थी और यह सूचना प्रत्यर्थी के पास कब पहुंची थी। यद्यपि तारीख 18 अक्टूबर, 1999 के आदेश में निकाला गया यह निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी ने कारण बताओ सूचना का जवाब देने के अवसर का फायदा नहीं उठाया, इस पृष्ठभूमि में सही है। तथापि, स्थिति यह उत्पन्न होती है कि इस बारे में सावधानी बरती जानी चाहिए जिससे कि अन्याय न हो। कारण बताओ सूचना से जो भेजी गई थी, नियमों के नियम 22(2) की अपेक्षा का अनुपालन नहीं होता क्योंकि कारण बताओ सूचना के साथ प्रत्यर्थी की प्रतिकूल रिपोर्टें संलग्न नहीं की गई थीं जबकि यह आज्ञापक अपेक्षा है जिससे कि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध दंड प्रस्तावित किया गया है, अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए समर्थ हो सके। नियमों के नियम 22 की स्कीम यह उपबंध करती है कि प्रतिकूल रिपोर्टें संलग्न न करना प्रस्तावित दंड के विरुद्ध कारण बताओ अवसर प्रदान करने के अधिकार का अतिक्रमण है। स्पष्टीकरण और प्रतिरक्षा पर विचार करने के लिए अर्थात् नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षा के लिए यह एक उपाय है जो विफल रहा है। मामले के विशिष्ट तथ्यों में उक्त अपेक्षा का अननुपालन आदेशों को अविधिमान्य बना देता है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन ऋजुतापूर्वक किया जाना चाहिए जिससे कि इसके अधीन कारण और उद्देश्य पूरा हो जाए। यद्यपि प्रत्यर्थी अनुशासनिक बल का सेवक है तथापि, यह बात नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के प्रवर्तन को विफल नहीं करेगी सिवाय वहां जहां यह पाया जाए कि इसका अनुपालन मात्र एक औपचारिकता होगी जिसका कि वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अनुमोदन नहीं किया जा सकता। अभिलेख से यह बात प्रकट नहीं है कि तारीख 16 सितंबर, 1999 का दंड का प्रस्ताव करने वाली कारण बताओ सूचना वस्तुतः कब भेजी गई थी और वह प्रत्यर्थी के पास कब पहुंची थी। प्रत्यर्थी ने प्रस्तावित दंड के विरुद्ध अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत किया है और यह अभ्यावेदन तारीख 15 अक्टूबर, 1999 को भेजा गया था जो कि उक्त अभ्यावेदन की प्राप्ति की अंतिम तारीख थी, तथापि, यह अपीलार्थी-कमांडेन्ट के पास तारीख 21 अक्टूबर, 1999 को पहुंचा जैसा कि उस लिफाफे (आर कवर) पर लगी मुहरों से स्पष्ट है, जिस लिफाफे में

उक्त अभ्यावेदन भेजा गया था । इन परिस्थितियों के अधीन प्रत्यर्थी को सुनवाई से वंचित किया गया है क्योंकि उसने अपने अभ्यावेदन में कतिपय तर्कयुक्त कारण दिए हैं जिन पर खारिजी का आदेश पारित किए जाने से पूर्व विचार किए जाने की आवश्यकता थी । उक्त आदेश कायम नहीं रखा जा सकता क्योंकि यह प्रत्यर्थी के सुने जाने के अधिकार से वंचित करने का प्रभाव रखता है और यह नियमों के नियम 22 के सम्पूर्ण उद्देश्य को विफल करने का प्रभाव रखता है । प्रत्यर्थी ने प्रस्तावित दंड के विरुद्ध अभ्यावेदन में अपनी प्रतिरक्षा में प्रमिततः यह कहा है कि वह सीमावर्ती ग्राम छन्नी ताना, तहसील अखनूर का निवासी है । सरकार ने मई/जून, 1999 के मास में अशान्ति को दृष्टिगत करते हुए कुटुम्बों को किसी सुरक्षित स्थान पर प्रवास करने की सलाह दी थी । वह भी अपने कुटुम्ब के साथ चला गया था । अतः उसने कंपनी कमांडेन्ट से छुट्टी मंजूर करने का अनुरोध किया था और सीमावर्ती क्षेत्र से अपने कुटुम्ब को ले जाने के लिए मौखिक अनुज्ञा चाही थी क्योंकि प्रत्यर्थी के सिवाय उसके कुटुम्ब की देखभाल करने वाला और कोई नहीं था । ग्राम चौकीदार, लम्बरदार और संबंधित पुलिस थाने के अधिकारी ने अशान्ति के संबंध में और कुटुम्बों को दूसरे स्थान पर ले जाने के संबंध में प्रमाणपत्र जारी किए हैं । कंपनी कमांडेन्ट ने भी उसके कुटुम्ब के लिए कतिपय वास सुविधा देने की सिफारिश की थी । अतः यह कहा जा सकता है कि उसे उसका पदभार ग्रहण करने के लिए समय अनुज्ञात किया गया और इस प्रकार वह अनुपस्थित नहीं रहा था अपितु उसने मौखिक अनुमति ली थी । एक गरीब व्यक्ति होने के नाते यदि उसे पदभार ग्रहण करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाता है तो उसके कुटुम्ब को नुकसान पहुंचेगा । यह भी उल्लेख किया गया है कि वह देश की सेवा करने के लिए तैयार है । उप-नियम (2) के निबंधनों में प्रत्यर्थी की सभी प्रतिकूल रिपोर्टें उसे प्रदत्त की जानी चाहिए थीं जो कि स्वीकृततः नहीं दी गईं और न ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस बारे में कोई कारण अभिलिखित किया गया है कि ऐसी किसी रिपोर्ट या उसके किसी भाग का प्रकटीकरण लोक हित में नहीं किया गया था । इस संबंध में अतिलंघन पदच्युति के आदेश को अविधिमान्य बना देता है । उस सक्षम प्राधिकारी ने भी जिसने तारीख 18 अक्टूबर, 1999 के आदेश के विरुद्ध अपील सुनी है, उक्त नियम स्थिति पर विचार नहीं किया और उसकी उपेक्षा करते हुए अपील खारिज कर दी । अपीलार्थी-कमांडेन्ट द्वारा तारीख 18 अक्टूबर, 1999 को पारित आदेश और अपीलार्थी उप महानिरीक्षक द्वारा तारीख 13 नवंबर,

2001 को पारित आदेश नियमों के नियम 22 के उल्लंघन में पारित किए गए हैं और इसलिए अपास्त किए जाने योग्य हैं और इसलिए अपास्त किए जाते हैं। (पैरा 13, 14, 15, 16, 17, 18 और 21)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की लेटर्स पेटेन्ट अपील एस. डब्ल्यू. सं. 158 और 2009 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 212.

जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय लेटर्स पेटेन्ट अपील नियमों के खंड 12 के अधीन अपील।

अपीलार्थियों की ओर से	श्री अजय शर्मा
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्रीमती सुरिन्दर कौर और सुश्री देवेन्द्र प्रीत कौर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मोहम्मद याकूब मीर ने दिया

न्या. मीर – तारीख 15 मई, 2009 के आक्षेपित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी की याचिका मंजूर की गई है। तारीख 18 अक्टूबर, 1999 का खारिजी आदेश जो प्रत्यर्थी के विरुद्ध था, अपास्त किया गया है। अपीलार्थियों को रिट याची (हमारे समक्ष प्रत्यर्थी) को सभी पारिणामिक फायदों सहित बहाल करने का निदेश दिया गया है। तथापि, अपीलार्थियों को नए सिरे से जांच कराने के लिए स्वतंत्रता दी गई है। उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर खंड 12 के अधीन यह लेटर्स पेटेन्ट अपील फाइल की गई है।

2. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी सं. 5 द्वारा तारीख 18 अक्टूबर, 1999 का खारिजी आदेश सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968 के उपबंधों तथा नियमों (जिन्हें आगे संक्षेप में 'अधिनियम' और 'नियम' कहा गया है) पर विचार करने के पश्चात् पारित किया गया था। प्रत्यर्थी अनुशासनिक बल में नियोजित था। उसे किसी प्राधिकार के बिना सेवा से अनुपस्थित रहने के कारण उसकी उपेक्षा को दृष्टिगत करते हुए किसी दंड के बिना सेवा से निकाला गया था। विद्वान् काउंसेल ने अपनी इस दलील के समर्थन में अभिलेख पेश किए हैं कि सभी प्रक्रियात्मक संरक्षणों का पूर्ण रूप से अनुपालन किया गया है।

3. विरोध स्वरूप प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी की अनुपस्थिति परिस्थितिजन्य थी। प्रथमतः चूंकि वह बीमार था

इसलिए उसे नियमित चिकित्सीय जांच की आवश्यकता थी । द्वितीयतः प्रत्यर्थी सीमा क्षेत्र के निकट स्थित ग्राम छन्नी ताना, तहसील अखनूर का निवासी है । सरकार ने मई/जून, 1999 में अशान्ति के दौरान गांव के निवासियों को सुरक्षित स्थानों पर जाने की सलाह दी थी । प्रथमतः कोई दंड अपेक्षित नहीं था और द्वितीयतः दंड नियमों के भंग के बारे में विचार किए बिना अननुपातिक रूप से अधिनिर्णीत किया गया था । प्रत्यर्थी ने उसे न सुने जाने की भी शिकायत की है ।

4. संविवाद के मूल्यांकन के लिए मामले के सही संक्षिप्त तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है ।

5. प्रत्यर्थी स्वीकृततः कांस्टेबल के रूप में कार्य कर रहा था और उसकी पहचान सं. 89004797 है । उसने 'डी' कंपनी 108 बटालियन सीमा सुरक्षा बल में तारीख 17 अक्टूबर, 1998 को अपना पदभार ग्रहण किया था । उसे एफ टी आर अस्पताल, जम्मू उपचार के लिए भेजा गया था, तथापि, उसे नवंबर/दिसंबर, 1998 के मास में विभिन्न तारीखों पर और वर्ष 1999 के जनवरी और मार्च में विभिन्न तारीखों पर जी. एम. सी. अस्पताल भेजा गया था । उसे टी. ए. सी. मुख्यालय पर उपस्थित होने का निदेश दिया गया था जहां वह उपस्थित नहीं हुआ और तारीख 23 जून, 1999 से छुट्टी लिए बिना सतत रूप से अनुपस्थित रहा ।

6. जब प्रत्यर्थी तारीख 23 जून, 1999 से छुट्टी लिए बिना अनुपस्थित रहा तो सहायक कमांडेन्ट के अधीन श्री नरेश कुमार द्वारा तारीख 13 जुलाई, 1999 को एक आदेश जारी किया गया और जिसमें यह कहा गया कि दो कांस्टेबलों द्वारा जिसमें प्रत्यर्थी सम्मिलित था जो तारीख 23 जून, 1999 (पूर्वाह्न) से बिना छुट्टी के अनुपस्थित रहा था, बिना छुट्टी के अनुपस्थित रहने और छुट्टी से परे अनुपस्थित रहने के बारे में जांच के लिए एक व्यक्तिय जांच न्यायालय गठित किया जाए । इसमें यह भी कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति दोषी पाया जाता है तो न्यायालय सीमा सुरक्षा बल नियमों के नियम 173(घ) के अनुसार कार्यवाही करेगा ।

7. उपर्युक्त एक व्यक्तिय जांच न्यायालय ने कार्यवाहियां आरंभ की थीं । अनेक प्रयासों के बावजूद प्रत्यर्थी की जांच में भागीदारी पूरी नहीं की जा सकी और इसलिए एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । निष्कर्ष स्वरूप यह मत व्यक्त किया गया कि सीमा सुरक्षा बल नियमों के नियम

173(घ) का अनुपालन नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्यर्थी जांच के समय उपस्थित नहीं रहा ।

8. कमांडेन्ट ने तारीख 14 सितंबर, 1999 को जांच न्यायालय के निष्कर्षों के आधार पर उसकी राय से सहमति व्यक्त करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि सीमा सुरक्षा बल अधिनियम और नियमों के अनुसार प्रत्यर्थी को पदभार ग्रहण करने के लिए कारण बताओ सूचना जारी की जाए और इससे विफल रहने पर सीमा सुरक्षा बल अधिनियम और नियमों के अधीन उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएं । इसके पश्चात् कारण बताओ सूचना जारी की गई थी जो इस प्रकार है :-

“विषय : कारण बताओ सूचना

यह कि आप तारीख 23 जून, 1999 (पूर्वाह्न) से छुट्टी लिए बिना अनुपस्थित रहे हैं । मेरी यह राय है कि इतनी लंबी अवधि के लिए छुट्टी लिए बिना इस अनुपस्थिति के कारण आपका आगे सेवा में बने रहना वांछनीय नहीं है । अतः मैं अनंतिम रूप से आपको पदच्युत करके आपको सेवा से बर्खास्त किए जाने के लिए प्रस्ताव करता हूं ।

2. यह कि यदि आप प्रस्तावित कार्यवाही के विरुद्ध अपनी प्रतिरक्षा में कुछ भी कहना चाहते हैं तो आप तारीख 15 अक्टूबर, 1999 से पूर्व ऐसा कर सकते हैं । यदि इस तारीख तक कोई जवाब प्राप्त नहीं होता है तो यह उपधारित किया जाएगा कि आपको प्रस्तावित कार्यवाही के विरुद्ध प्रतिरक्षा के रूप में कुछ नहीं कहना है और इस संबंध में एकपक्षीय विनिश्चय लिया जाएगा ।”

9. प्रत्यर्थी द्वारा उक्त कारण बताओ सूचना को 1999 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 2375 द्वारा आक्षेपित किया गया था । उक्त याचिका में तारीख 20 अक्टूबर, 1999 को अंतरिम आदेश द्वारा निम्नलिखित निदेश जारी किए गए थे :-

“..... इस दौरान प्रत्यर्थी याची को अपना पदभार ग्रहण करने के लिए इस शर्त के साथ अनुज्ञात करेंगे बशर्ते कि उसकी सेवाएं नियमित कर दी गई हों ।”

10. रिट याचिका के लंबन के दौरान अपीलार्थी-कमांडेन्ट ने तारीख 18 अक्टूबर, 1999 को एक आदेश पारित किया जो इस प्रकार है :-

“मैंने इस इकाई की ‘डी’ कंपनी के कांस्टेबल बाबू सिंह सं. 89004797 के विरुद्ध छुट्टी के बिना अनुपस्थित रहने के मामले पर गहराई से विचार किया। उसे इस कार्यालय द्वारा तारीख 16 सितंबर, 1999 के पत्र सं. स्थापन/108/ए. डब्ल्यू. एल./99/1185-86 द्वारा कारण बताओ सूचना जारी करके अवसर दिया गया था जिसका फायदा उसने नहीं उठाया। मेरा यह समाधान हो गया है कि वह किसी युक्तियुक्त कारण के बिना तारीख 23 जून, 1999 (पूर्वाह्न) से छुट्टी के बिना अनुपस्थित रहा है और आगे उसकी सेवाएं जारी रखना वांछनीय नहीं है। अतः मैं सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968 की धारा 11(2) और सीमा सुरक्षा बल नियम, 1969 के नियम 177 के अधीन तारीख 18 अक्टूबर, 1999 (पूर्वाह्न) से उसे सेवा से पदच्युत करता हूँ। तारीख 23 जून, 1999 से उसकी अनुपस्थिति की अवधि ‘अनस्तित्वयुक्त’ समझी जाएगी।

2. सेवक को तारीख 18 अक्टूबर, 1999 (पूर्वाह्न) से इस इकाई से बाहर समझा जाएगा।

3. सरकार द्वारा उसको जारी 634 रुपए (छह सौ चौंतीस रुपए) की लागत के कपड़े/उपकरण कम पाए गए हैं जो उसे देय धनराशि से वसूल किए जाएंगे और सरकारी कोषागार में जमा किए जाएंगे।”

11. प्रत्यर्थी ने 2000 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 343 द्वारा तारीख 18 अक्टूबर, 1999 के उक्त आदेश को आक्षेपित किया था जिसका इस आधार पर विरोध किया गया था कि रिट याची के पास अगले उच्चतर प्राधिकारी के समक्ष अपील फाइल करने का वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है। रिट याची (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी) ने यह दलील दी कि वह तारीख 31 मई, 2001 को या इससे पूर्व सक्षम प्राधिकारी के समक्ष अपील फाइल करेगा। सक्षम प्राधिकारी अर्थात् सीमा सुरक्षा बल एस. एच. क्यू. बी. एस. एफ. सी. आई. (ओ. पी. एस.), रामबन के उप महानिरीक्षक के समक्ष फाइल की गई अपील तारीख 13 नवंबर, 2001 के विस्तृत आदेश द्वारा खारिज कर दी गई।

12. इस संबंध में पुनः 2001 की नई रिट याचिका एस. डब्ल्यू. पी. सं. 3142 फाइल की गई थी जिसमें अपीलार्थी-कमांडेन्ट द्वारा तारीख 18 अक्टूबर, 1999 को पारित आदेश और सीमा सुरक्षा बल के उप महानिरीक्षक अर्थात् अपीलार्थी द्वारा तारीख 13 नवंबर, 2001 को पारित

आदेश को अभिखंडित करने की ईप्सा की गई थी जिसे तारीख 15 मई, 2009 के आक्षेपित आदेश द्वारा मंजूर किया गया है ।

13. अभिलेख के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी ने प्रस्तावित दंड अर्थात् तारीख 16 सितंबर, 1999 की कारण बताओ सूचना के जवाब में रजिस्ट्रीकृत डाक से एक लिफाफे में अपना अभ्यावेदन भेजा था और यह अभिलेख पर पेश किए जाने के कारण उपलब्ध है । लिफाफे से यह प्रकट होता है कि अभ्यावेदन तारीख 15 अक्टूबर, 1999 को भेजा गया था जो अपीलार्थी-कमांडेन्ट को तारीख 21 अक्टूबर, 1999 को प्राप्त हुआ था । जबकि कारण बताओ सूचना के अनुसार प्रत्यर्थी से अपना जवाब तारीख 15 अक्टूबर, 1999 को या इससे पूर्व प्रस्तुत करने की ईप्सा की गई थी और सेवा समाप्ति का आदेश तारीख 18 अक्टूबर, 1999 को पारित किया गया था जिसका यह अर्थ है कि कारण बताओ सूचना का जवाब अपीलार्थी-कमांडेन्ट के पास तारीख 18 अक्टूबर, 1999 को सेवा समाप्ति का आदेश पारित करने के पूर्व पहुंच चुका था ।

14. अभिलेख से यह उपदर्शित नहीं होता है कि कारण बताओ सूचना कब भेजी गई थी और यह सूचना प्रत्यर्थी के पास कब पहुंची थी । यद्यपि तारीख 18 अक्टूबर, 1999 के आदेश में निकाला गया यह निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी ने कारण बताओ सूचना का जवाब देने के अवसर का फायदा नहीं उठाया, इस पृष्ठभूमि में सही है । तथापि, स्थिति यह उत्पन्न होती है कि इस बारे में सावधानी बरती जानी चाहिए जिससे कि अन्याय न हो ।

15. कारण बताओ सूचना से जो भेजी गई थी, नियमों के नियम 22(2) की अपेक्षा का अनुपालन नहीं होता क्योंकि कारण बताओ सूचना के साथ प्रत्यर्थी की प्रतिकूल रिपोर्टें संलग्न नहीं की गई थीं जबकि यह आज्ञापक अपेक्षा है जिससे कि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध दंड प्रस्तावित किया गया है, अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए समर्थ हो सके । नियमों के नियम 22 की स्कीम यह उपबंध करती है कि प्रतिकूल रिपोर्टें संलग्न न करना प्रस्तावित दंड के विरुद्ध कारण बताओ अवसर प्रदान करने के अधिकार का अतिक्रमण है । स्पष्टीकरण और प्रतिरक्षा पर विचार करने के लिए अर्थात् नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षा के लिए यह एक उपाय है जो विफल रहा है । मामले के विशिष्ट तथ्यों में उक्त अपेक्षा का अननुपालन आदेशों को अविधिमान्य बना देता है । नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन ऋजुतापूर्वक किया जाना चाहिए जिससे कि इसके अधीन कारण और उद्देश्य पूरा हो जाए ।

16. यद्यपि प्रत्यर्थी अनुशासनिक बल का सेवक है तथापि, यह बात नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के प्रवर्तन को विफल नहीं करेगी सिवाय वहां जहां यह पाया जाए कि इसका अनुपालन मात्र एक औपचारिकता होगी जिसका कि वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अनुमोदन नहीं किया जा सकता ।

17. अभिलेख से यह बात प्रकट नहीं है कि तारीख 16 सितंबर, 1999 का दंड का प्रस्ताव करने वाली कारण बताओ सूचना वस्तुतः कब भेजी गई थी और वह प्रत्यर्थी के पास कब पहुंची थी । प्रत्यर्थी ने प्रस्तावित दंड के विरुद्ध अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत किया है और यह अभ्यावेदन तारीख 15 अक्टूबर, 1999 को भेजा गया था जो कि उक्त अभ्यावेदन की प्राप्ति की अंतिम तारीख थी, तथापि, यह अपीलार्थी-कमांडेन्ट के पास तारीख 21 अक्टूबर, 1999 को पहुंचा जैसा कि उस लिफाफे (आर कवर) पर लगी मुहरों से स्पष्ट है, जिस लिफाफे में उक्त अभ्यावेदन भेजा गया था । इन परिस्थितियों के अधीन प्रत्यर्थी को सुनवाई से वंचित किया गया है क्योंकि उसने अपने अभ्यावेदन में कतिपय तर्कयुक्त कारण दिए हैं जिन पर खारिजी का आदेश पारित किए जाने से पूर्व विचार किए जाने की आवश्यकता थी । उक्त आदेश कायम नहीं रखा जा सकता क्योंकि यह प्रत्यर्थी के सुने जाने के अधिकार से वंचित करने का प्रभाव रखता है और यह नियमों के नियम 22 के सम्पूर्ण उद्देश्य को विफल करने का प्रभाव रखता है ।

18. प्रत्यर्थी ने प्रस्तावित दंड के विरुद्ध अभ्यावेदन में अपनी प्रतिरक्षा में प्रमिततः यह कहा है कि वह सीमावर्ती ग्राम छन्नी ताना, तहसील अखनूर का निवासी है । सरकार ने मई/जून, 1999 के मास में अशान्ति को दृष्टिगत करते हुए कुटुम्बों को किसी सुरक्षित स्थान पर प्रवास करने की सलाह दी थी । वह भी अपने कुटुम्ब के साथ चला गया था । अतः उसने कंपनी कमांडेन्ट से छुट्टी मंजूर करने का अनुरोध किया था और सीमावर्ती क्षेत्र से अपने कुटुम्ब को ले जाने के लिए मौखिक अनुज्ञा चाही थी क्योंकि प्रत्यर्थी के सिवाय उसके कुटुम्ब की देखभाल करने वाला और कोई नहीं था । ग्राम चौकीदार, लम्बरदार और संबंधित पुलिस थाने के अधिकारी ने अशान्ति के संबंध में और कुटुम्बों को दूसरे स्थान पर ले जाने के संबंध में प्रमाणपत्र जारी किए हैं । कंपनी कमांडेन्ट ने भी उसके कुटुम्ब के लिए कतिपय वास

सुविधा देने की सिफारिश की थी । अतः यह कहा जा सकता है कि उसे उसका पदभार ग्रहण करने के लिए समय अनुज्ञात किया गया और इस प्रकार वह अनुपस्थित नहीं रहा था अपितु उसने मौखिक अनुमति ली थी । एक गरीब व्यक्ति होने के नाते यदि उसे पदभार ग्रहण करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाता है तो उसके कुटुम्ब को नुकसान पहुंचेगा । यह भी उल्लेख किया गया है कि वह देश की सेवा करने के लिए तैयार है ।

19. अपीलार्थी-कमांडेन्ट अधिनियम की धारा 11(2) के साथ पठित नियमों के नियम 177 के निबंधनों में किसी अधिकारी या अधीनस्थ अधिकारी के सिवाय अपने अधीन कार्य करने वाले किसी व्यक्ति को सेवा से पदच्युत करने या हटाने के लिए विहित प्राधिकारी है । तदनुसार प्रत्यर्थी की यह दलील कि कमांडेन्ट दंड अधिरोपित करने के लिए सक्षम नहीं था, निरस्त की जाती है ।

20. निस्संदेह कमांडेन्ट शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम है जैसा कि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, तथापि, उसे नियमों के नियम 22 का अनुपालन करना चाहिए था जो यह उपबंध करता है कि जहां सेवा समाप्ति का कोई दंड प्रस्तावित है वहां अपचारी को नियमों के नियम 22 के उप-नियम (2) के अधीन निर्दिष्ट रीति में कारण बताने के लिए अवसर देना आवश्यक है । नियम 22 सुसंगत है, अतः नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

“22. अवचार के आधार पर अधिकारी के सिवाय अन्य व्यक्तियों को सेवा से पदच्युत करना या हटाया जाना – (1) जहां यह उपधारित किया जाए कि किसी अधिकारी के सिवाय अधिनियम के अधीन किसी व्यक्ति को सेवा से हटाया जाना है, वहां सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे पदच्युत करने या हटाने के लिए ऐसी कार्रवाई करने से पूर्व उप-नियम (2) में विनिर्दिष्ट रीति में कारण बताओ सूचना देकर अवसर दिया जाएगा :

परंतु यह उप-नियम वहां लागू नहीं होगा –

(क) जहां सेवा ऐसे अवचार के आधार पर पर्यवसित की गई है जो किसी दंड न्यायालय द्वारा या सुरक्षा बल न्यायालय द्वारा उसकी दोषसिद्धि के आधार पर हो ;

(ख) जहां सक्षम प्राधिकारी का यह समाधान हो गया हो कि लिखित में अभिलिखित कारणों के आधार पर यह समीचीन या युक्तियुक्त रूप से व्यवहार्य नहीं है कि संबंधित व्यक्ति को कारण बताने का अवसर दिया जाएगा ।

(2) जहां संबंधित व्यक्ति के अवचार के संबंध में रिपोर्टों पर विचार करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी का यह समाधान हो गया हो कि ऐसे किसी व्यक्ति का विचारण समीचीन या अव्यवहार्य है किंतु उसकी यह राय है कि उसका आगे सेवा में बना रहना अवांछनीय है तो वह उसके प्रतिकूल सभी रिपोर्टों के साथ उसे इस बारे में सूचित करेगा और उसे अपना स्पष्टीकरण और प्रतिरक्षा लिखित में प्रस्तुत करने के लिए आह्वान करेगा :

परंतु सक्षम प्राधिकारी वहां किसी रिपोर्ट या उसके भाग को प्रकट नहीं करेगा, यदि उसकी राय में ऐसा प्रकटीकरण लोक हित में नहीं है ।

(3) सक्षम प्राधिकारी उसके स्पष्टीकरण और प्रतिरक्षा, यदि कोई हो, पर विचार करने के पश्चात् उसे सेवा से पेंशन सहित या पेंशन के बिना पदच्युत या सेवा से हटा सकेगा :

परंतु कोई उप महानिरीक्षक सूबेदार रैंक के या उससे ऊपर के किसी अधीनस्थ अधिकारी को सेवा से पदच्युत नहीं करेगा या नहीं हटाएगा ।

(4) इस नियम के अधीन पदच्युति या हटाए जाने के सभी मामलों की महानिदेशक को सूचना दी जाएगी ।”

21. उप-नियम (2) के निबंधनों में प्रत्यर्थी की सभी प्रतिकूल रिपोर्टों उसे प्रदत्त की जानी चाहिए थीं जो कि स्वीकृततः नहीं दी गईं और न ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस बारे में कोई कारण अभिलिखित किया गया है कि ऐसी किसी रिपोर्ट या उसके किसी भाग का प्रकटीकरण लोक हित में नहीं किया गया था । इस संबंध में अतिलंघन पदच्युति के आदेश को अविधिमान्य बना देता है । उस सक्षम प्राधिकारी ने भी जिसने तारीख 18 अक्टूबर, 1999 के आदेश के विरुद्ध अपील सुनी है, उक्त नियम स्थिति

पर विचार नहीं किया और उसकी उपेक्षा करते हुए अपील खारिज कर दी । अपीलार्थी-कमांडेन्ट द्वारा तारीख 18 अक्टूबर, 1999 को पारित आदेश और अपीलार्थी उप महानिरीक्षक द्वारा तारीख 13 नवंबर, 2001 को पारित आदेश नियमों के नियम 22 के उल्लंघन में पारित किए गए हैं और इसलिए अपास्त किए जाने योग्य हैं और इसलिए अपास्त किए जाते हैं ।

22. अपीलार्थी-प्राधिकारी इस बात के लिए स्वतंत्र होंगे कि यदि वह प्रत्यर्थी के विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाही करना पसंद करते हैं तो वे नियमों के अनुसार कार्यवाही करके समुचित आदेश पारित कर सकते हैं । उपर्युक्त प्रयोग 12 सप्ताह के भीतर आरंभ करके पूरा किया जाएगा और यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो प्रत्यर्थी को दोषमुक्त समझा जाएगा और उसे सभी पारिणामिक फायदे प्रदान किए जाएंगे ।

23. उपर्युक्त तथ्यों और कारणों से आक्षेपित निर्णय की पुष्टि की जाती है । परिणामतः अपील खारिज की जाती है ।

24. 1999 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 2375 निपटाई नहीं गई है जो अब उपर्युक्त स्थिति को दृष्टिगत करते हुए आगे विचार के लिए कायम नहीं रखी जा सकती है और इसलिए उसे निपटाया हुआ समझा जाएगा ।

25. अभिलेख जो अपीलार्थी के विद्वान् काउंसिल द्वारा पेश किया गया है, उन्हें वापस किया जाएगा ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

आशिक हुसैन

बनाम

राज्य और अन्य

तारीख 26 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 – धारा 103 – वर्ग 4 पदों की भर्ती के लिए विज्ञापन – शारीरिक रूप से निःशक्त अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण – शारीरिक रूप से निःशक्त अभ्यर्थी के अधिक अंक होने के कारण खुली योग्यता प्रवर्ग में स्थानांतरण – याची द्वारा रिट याचिका में चुनौती – अधिसूचित सूची अनंतिम सूची होने के कारण याची को आक्षेप का अवसर – याची की याचिका खारिज किए जाने योग्य है ।

याची ने वर्ग 4 के पदों की भर्ती के लिए विज्ञापन के जवाब में आवेदन किया था । याची का चयन न होने से व्यथित होकर उसने जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 की धारा 103 के अधीन वर्तमान सिविल रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी सं. 4 ने तारीख 19 सितंबर, 2012 अर्थात् उस तारीख को जिस दिन याची और अन्य अभ्यर्थी साक्षात्कार में उपस्थित हुए थे, शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन क्रम संख्या 1 पर अंकित मसरत अख्तर को खुली योग्यता प्रवर्ग में रखने का विनिश्चय किया । यह विनिश्चय इसलिए लिया गया था कि खुली योग्यता प्रवर्ग के अधीन अंतिम अभ्यर्थी द्वारा मसरत अख्तर के मुकाबले कम अंक प्राप्त करना पाया गया था । आर. बी. ए. प्रवर्ग के मामले में भी आर. बी. ए. प्रवर्ग के अधीन 14 अभ्यर्थी खुली योग्यता प्रवर्ग के अधीन अंतिम चयनित अभ्यर्थी के मुकाबले अधिक योग्य पाए गए थे । आर. बी. ए. और शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन 1:5 का अनुपात कायम रखने के लिए उन अभ्यर्थियों के नाम जिन्होंने 2 प्रवर्गों में आवेदन किए थे किन्तु जिन्होंने पूर्व में छांटे गए योग्य अभ्यर्थियों के मुकाबले कम अंक प्राप्त किए थे, सूची में रखे गए थे और उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था । संयोगवश प्रत्यर्थी संख्या 5 का नाम

अगली पंक्ति में अर्थात् शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन छठवीं स्थिति में था और इसलिए उसे शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन बनाई गई सूची में क्रम संख्या 1 पर मसरत अख्तर का नाम आने के पश्चात् पांचवीं स्थिति में ऊपर रखा गया था और खुली योग्यता प्रवर्ग सूची में स्थानांतरित कर दिया गया था । तदनुसार उसे साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था और शैक्षिक अर्हता में उसकी योग्यता और साक्षात्कार में प्राप्त अंकों के आधार पर उसे शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन एक मात्र रिक्ति के विरुद्ध चयनित किया गया था । अतः अभिलेख से यह उपदर्शित होता है कि यह विनिश्चय चयन प्रक्रिया को अंतिम रूप देने के पश्चात् नहीं किया गया था जैसा कि याची द्वारा बताया गया है । अभिलेख से प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 और 6 द्वारा कोई पक्षपात करना या असदभाविक कार्य करना उपदर्शित नहीं होता है । याची के नाम पर प्रत्यर्थी संख्या 5 के साथ विज्ञापित पद के लिए विचार किया गया था और वह इसलिए पिछड़ गया था क्योंकि उसकी योग्यता कम थी और शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन उपस्थित अन्य अभ्यर्थियों से कम तथा प्रत्यर्थी संख्या 5 की योग्यता के मुकाबले निम्न थी । यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी संख्या 5 को सूची में रखने का विनिश्चय चयन प्रक्रिया के दौरान पात्रता मानदंड में परिवर्तन के बराबर था क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 4 ने पात्रता मानदंड का पालन किया था और 1:5 का अनुपात कायम रखा था और इसलिए शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग की सूची में के ऊपर के अभ्यर्थी को खुली योग्यता प्रवर्ग में स्थानांतरित करने के कारण योग्यता क्रम में अगली पंक्ति में के अभ्यर्थी के नाम पर विचार किया गया था । इसके अतिरिक्त तारीख 25 सितंबर, 2012 की अधिसूचना अनंतिम चयन सूची मात्र है । इसमें शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन किसी अभ्यर्थी के अनंतिम चयन से व्यथित अभ्यर्थियों द्वारा आक्षेप, यदि कोई हों, फाइल करने की पूर्ण गुंजाइश है । याची को प्रत्यर्थी संख्या 5 की अनंतिम चयन सूची के विरुद्ध आक्षेप फाइल करने का अधिकार और अवसर प्राप्त था जिसका याची ने फायदा लेना पसंद नहीं किया और इसके बजाय उसने अपरिपक्व प्रक्रम पर न्यायालय की रिट अधिकारिता का अवलंब लेना पसंद किया । उपर्युक्त विवेचित कारणों से रिट याचिका में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है । (पैरा 8, 9, 10 और 11)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2012 की सिविल रिट याचिका संख्या 229.

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 की धारा 103 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से

श्री आई.सोफी

प्रत्यर्थियों की ओर से

सर्वश्री एस. एस. नाइक और
जहांगीर आई. गनई

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी – वर्तमान याचिका में प्रत्यर्थी सं. 3 मुख्य शिक्षा अधिकारी, बडगाम ने तारीख 10 जनवरी, 2011 की विज्ञापन अधिसूचना संख्या 1 द्वारा शिक्षा विभाग, बडगाम में उपलब्ध वर्ग 4 पदों के लिए पात्र अभ्यर्थियों से आवेदन पत्र आमंत्रित किए थे । याची और प्रत्यर्थी संख्या 5 उन अभ्यर्थियों से थे जिन्होंने शारीरिक निःशक्तता प्रवर्ग (संक्षेप में पी. एच. सी.) के अधीन विज्ञापित पद के लिए आवेदन किया था । विज्ञापन सूचना के जवाब में वृहत् आवेदनों को देखते हुए प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा अपनी अध्यक्षता में चयन समिति का गठन किया गया था । चयन समिति ने 1:5 के अनुपात में अभ्यर्थियों की छंटनी सूची बनाई थी जो अर्हता परीक्षा में उनकी योग्यता के आधार पर बनाई गई थी । तारीख 16 सितंबर, 2012 को छंटनी किए गए विभिन्न प्रवर्गों के अंतर्गत छंटनी सूची को जिसमें शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग को सम्मिलित किया गया था, स्थानीय दैनिक में प्रकाशित किया गया था । 30 विज्ञापित रिक्तियों के लिए विभिन्न प्रवर्गों के अधीन कुल 150 अभ्यर्थी छांटे गए थे जिनमें से 5 अभ्यर्थी शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन उपलब्ध 1 रिक्ति के लिए छंटनी सूची बनाई गई थी ।

2. याची जिसने 43.24 अंक प्राप्त किए थे, शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन अधिसूचित उन पांच अभ्यर्थियों में से एक था जो तारीख 19 सितंबर, 2012 को चयन समिति के समक्ष साक्षात्कार के लिए उपस्थित हुए थे । प्रत्यर्थी सं. 3 ने 2011 की अधिसूचना संख्या 4 द्वारा जो तारीख 21 सितंबर, 2011 को प्रकाशित हुई थी, प्रत्यर्थी सं. 4 को शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन साक्षात्कार के लिए बुलाया था और तारीख 21 सितंबर, 2012 को उसका साक्षात्कार लिया था । प्रत्यर्थी सं. 4 ने अर्हित परीक्षा में अपनी योग्यता के आधार पर 42 अंक प्राप्त किए और नियत अंकों अर्थात् 42.91 के जो तारीख 16 सितंबर, 2012 को अधिसूचित छंटनी सूची में नियत किए गए थे, संबंध में छंटनी सूची के लिए अर्हता प्राप्त नहीं की । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी संख्या 4 ने तारीख 25

सितंबर, 2012 को चयन सूची प्रकाशित की जिसमें प्रत्यर्थी सं. 5 को शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन पद पर चयनित उपदर्शित किया गया था ।

3. याची ने तारीख 21 सितंबर, 2011 की अधिसूचना संख्या 4 से जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 5 को विज्ञापित पद के लिए शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन सूचित किया गया था और तारीख 25 सितंबर, 2012 की अधिसूचना से जिसके द्वारा चयन सूची अधिसूचित की गई थी और याची को शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के लिए चयनित घोषित किया गया था, व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका फाइल की । याची ने रिट याचिका में दिए गए आधारों पर उक्त दोनों सूचनाओं के अभिखण्डन के लिए और प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 को यह निदेश देने के लिए अनुरोध किया है कि वे याची के नाम पर तारीख 10 जनवरी, 2011 की अधिसूचना संख्या 01 द्वारा वर्ग 4 की रिक्ति के लिए विज्ञापित रिक्ति पर चयन और नियुक्ति के लिए विचार करें ।

4. याची का यह पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 को तारीख 19 सितंबर, 2012 को चयन प्रक्रिया को अंतिम रूप देने के पश्चात् विज्ञापित पद के लिए शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन किसी भी प्रकार से प्रत्यर्थी संख्या 5 का नाम साक्षात्कार के लिए सूची में डालने का अधिकार है । याची के अनुसार यह प्रयोग प्रत्यर्थी सं. 5 को फायदा देने के लिए और याची के नाम पर विचार किए जाने हेतु उसके अधिकार से वंचित करने के लिए और तत्पश्चात् विज्ञापित पद पर प्रत्यर्थी सं. 5 को चयनित करने के लिए परोक्ष हेतु के साथ किया गया है । यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी संख्या 5 के नाम पर जिसने 42 अंक प्राप्त किए हैं, पद के विरुद्ध विचार किए जाने का अधिकार नहीं है और प्रत्यर्थियों ने न केवल नियत योग्यता मानदंड से नीचे उसकी योग्यता होने पर ध्यान न देकर प्रत्यर्थी संख्या 5 को सूची में डाला अपितु उसका चयन भी किया और प्रत्यर्थी संख्या 5 के मुकाबले शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन छंटनी सूची में अन्य अभ्यर्थियों की उपेक्षा की ।

5. प्रत्यर्थियों ने यह अभिवचन करते हुए रिट याचिका फाइल करने के याची के अधिकार को प्रश्नगत किया है कि याची को विज्ञापित पद पर चयनित किए जाने का कोई अधिकार नहीं है और उसे केवल उसके नाम पर विचार किए जाने का अधिकार है और याची के नाम पर विचार किया गया है और चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए अनुज्ञात किया गया है ।

यह दलील दी गई है कि शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन सूची में रखे गए अभ्यर्थियों में से एक अभ्यर्थी को खुली योग्यता सूची प्रवर्ग में स्थानांतरित करने का प्रयोग केवल शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग तक निर्बंधित नहीं था और आर. बी. ए. प्रवर्ग के अधीन 14 अन्य अभ्यर्थियों को भी इसी प्रकार से खुली योग्यता प्रवर्ग सूची में स्थानांतरित किया गया था। प्रत्यर्थियों ने इस प्रयोग के लिए कारण स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि आर. बी. ए. प्रवर्ग के 14 अभ्यर्थियों और शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के एक अभ्यर्थी को आर. बी. ए. प्रवर्ग में स्थानांतरित किया गया था क्योंकि इन अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त किए गए अंक खुली योग्यता प्रवर्ग सूची के अधीन चयनित अंतिम अभ्यर्थी द्वारा प्राप्त अंकों के मुकाबले अधिक थे। प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि आर. बी. ए. प्रवर्ग के 14 अभ्यर्थियों और शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग से एक अभ्यर्थी अर्थात् मसरत अख्तर को खुली योग्यता प्रवर्ग में स्थानांतरित किए जाने पर प्रत्येक प्रवर्ग की अगली पंक्ति में के अभ्यर्थियों के नाम छानटे गए थे और उनके नाम तारीख 21 सितंबर, 2011 की अधिसूचना द्वारा अधिसूचित किए गए थे। इस बात से इनकार किया गया है कि तारीख 21 सितंबर, 2012 की अधिसूचना संख्या 4/2012 चयन प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् जारी की गई थी।

6. प्रत्यर्थियों ने इस बात पर बल दिया है कि चयन समिति द्वारा तारीख 19 सितंबर, 2012 को एक मत से इस आशय का विनिश्चय लिया गया था और उसके पश्चात् आर. बी. ए. प्रवर्ग के अधीन तथा शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन छानटे गए अभ्यर्थियों की सूची तारीख 21 सितंबर, 2012 की अधिसूचना संख्या 4 द्वारा अधिसूचित की गई थी। इस बात से भी इनकार किया गया है कि विनिश्चय विचार-विमर्श के पश्चात् किया गया था या विनिश्चय चयन प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् किया गया था और यह विनिश्चय प्रत्यर्थी संख्या 5 को फायदा पहुंचाने के लिए किया गया था। यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी सं. 5 ने याची द्वारा प्राप्त 49.70 अंकों के मुकाबले कुल 55.33 अंक प्राप्त किए थे और इसलिए शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग में उसे अधिक योग्य होने के आधार पर चयनित किया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 5 ने भी उन्हीं आधारों पर याचिका का विरोध किया जिन आधारों पर प्रत्यर्थी 1 से 4 और 6 द्वारा याचिका का विरोध किया गया है।

7. मैंने अभिवचनों और विद्वान् ए. ए. जी. श्री एस. एस. नाइक द्वारा उपलब्ध कराए गए अभिलेख का भी परिशीलन किया। मैंने पक्षकारों के

विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

8. अभिलेख के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी सं. 4 ने तारीख 19 सितंबर, 2012 अर्थात् उस तारीख को जिस दिन याची और अन्य अभ्यर्थी साक्षात्कार में उपस्थित हुए थे, शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन क्रम संख्या 1 पर अंकित मसरत अख्तर को खुली योग्यता प्रवर्ग में रखने का विनिश्चय किया । यह विनिश्चय इसलिए किया गया था कि खुली योग्यता प्रवर्ग के अधीन अंतिम अभ्यर्थी द्वारा मसरत अख्तर के मुकाबले कम अंक प्राप्त करना पाया गया था । आर. बी. ए. प्रवर्ग के मामले में भी आर. बी. ए. प्रवर्ग के अधीन 14 अभ्यर्थी खुली योग्यता प्रवर्ग के अधीन अंतिम चयनित अभ्यर्थी के मुकाबले अधिक योग्य पाए गए थे । आर. बी. ए. और शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन 1:5 का अनुपात कायम रखने के लिए उन अभ्यर्थियों के नाम जिन्होंने 2 प्रवर्गों में आवेदन किए थे किन्तु जिन्होंने पूर्व में छांटे गए योग्य अभ्यर्थियों के मुकाबले कम अंक प्राप्त किए थे, सूची में रखे गए थे और उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था । संयोगवश प्रत्यर्थी संख्या 5 का नाम अगली पंक्ति में अर्थात् शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन छठवीं स्थिति में था और इसलिए उसे शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन बनाई गई सूची में क्रम संख्या 1 पर मसरत अख्तर का नाम आने के पश्चात् पांचवीं स्थिति में ऊपर रखा गया था और खुली योग्यता प्रवर्ग सूची में स्थानांतरित कर दिया गया था । तदनुसार उसे साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था और शैक्षिक अर्हता में उसकी योग्यता और साक्षात्कार में प्राप्त अंकों के आधार पर उसे शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन एक मात्र रिक्ति के विरुद्ध चयनित किया गया था ।

9. अतः अभिलेख से यह उपदर्शित होता है कि यह विनिश्चय चयन प्रक्रिया को अंतिम रूप देने के पश्चात् नहीं किया गया था जैसा कि याची द्वारा बताया गया है । अभिलेख से प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 और 6 द्वारा कोई पक्षपात करना या असद्भाविक कार्य करना उपदर्शित नहीं होता है । याची के नाम पर प्रत्यर्थी संख्या 5 के साथ विज्ञापित पद के लिए विचार किया गया था और वह इसलिए पिछड़ गया था क्योंकि उसकी योग्यता कम थी और शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन उपस्थित अन्य अभ्यर्थियों से कम तथा प्रत्यर्थी संख्या 5 की योग्यता के मुकाबले निम्न थी । यह नहीं

कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी संख्या 5 को सूची में रखने का विनिश्चय चयन प्रक्रिया के दौरान पात्रता मानदंड में परिवर्तन के बराबर था क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 4 ने पात्रता मानदंड का पालन किया था और 1:5 का अनुपात कायम रखा था और इसलिए शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग की सूची में के ऊपर के अभ्यर्थी को खुली योग्यता प्रवर्ग में स्थानांतरित करने के कारण योग्यता क्रम में अगली पंक्ति में के अभ्यर्थी के नाम पर विचार किया गया था ।

10. इसके अतिरिक्त तारीख 25 सितंबर, 2012 की अधिसूचना अनंतिम चयन सूची मात्र है । इसमें शारीरिक रूप से निःशक्त प्रवर्ग के अधीन किसी अभ्यर्थी के अनंतिम चयन से व्यथित अभ्यर्थियों द्वारा आक्षेप, यदि कोई हों, फाइल करने की पूर्ण गुंजाइश है । याची को प्रत्यर्थी संख्या 5 की अनंतिम चयन सूची के विरुद्ध आक्षेप फाइल करने का अधिकार और अवसर प्राप्त था जिसका याची ने फायदा लेना पसंद नहीं किया और इसके बजाय उसने अपरिपक्व प्रक्रम पर न्यायालय की रिट अधिकारिता का अवलंब लेना पसंद किया ।

11. उपर्युक्त विवेचित कारणों से रिट याचिका में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है । प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 नियमों के अनुसार तारीख 25 सितंबर, 2012 की अधिसूचना द्वारा अनंतिम चयन सूची पर कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र हैं ।

12. रिट याचिका खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी

बनाम

परमजीत सिंह और एक अन्य

तारीख 4 सितंबर, 2013

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – क्षतियां – निःशक्तता – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा यह अभिवाक् करना कि दावेदार को क्षतियां उस पर हमले के परिणामस्वरूप आई थीं – साक्ष्य से यह साबित होना कि दावेदार को क्षतियां मोटर यान की अर्थात् ट्रक की टक्कर के कारण पहुंची थीं – दावा ग्राह्य है – अतः बीमा कंपनी प्रतिकर के लिए जिम्मेदार है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 166 – मोटर दुर्घटना द्वारा क्षतियां – प्रतिकर के लिए दावा – निचले न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर के लिए तर्कसंगत कारण दिया जाना – अधिनिर्णीत प्रतिकर में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

यह सिविल प्रथम प्रकीर्ण अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जम्मू द्वारा तारीख 3 अक्टूबर, 2011 को पारित उस निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जो फाइल संख्या 307/क्लेम परमजीत सिंह बनाम श्रीमती नरेन्द्र कौर और अन्य में पारित किया गया था और जिसके द्वारा न्यायालय के समक्ष के दावेदार-प्रत्यर्थी संख्या 1 के हक में, न्यायालय के समक्ष के अपीलार्थी के विरुद्ध दावा आवेदन फाइल करने की तारीख से वसूली की तारीख तक 7.5 प्रतिशत ब्याज सहित 2,70,000/- रुपए का अधिनिर्णय पारित किया गया है और इस अधिनिर्णीत धनराशि को अपील के ज्ञापन में दिए गए आधारों पर अपीलार्थी पर संदाय करने का दायित्व अधिरोपित किया गया है । अतः बीमा कंपनी द्वारा व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सही है कि यह साबित करने के लिए कि फाइल पर कोई पुख्ता साक्ष्य नहीं है कि दुर्घटना करने वाले यान का चालक यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था और उसने दुर्घटना कारित

की। तथापि, इसके साथ ही साथ जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, फाइल पर इस आशय का साक्ष्य है कि दावेदार-परमजीत सिंह को उस समय गंभीर क्षतियां पहुंची थीं जब उसे दुर्घटना करने वाले ट्रक द्वारा टक्कर मारी गई थी। अतः दावेदार को पहुंची क्षतियां मोटर यान के उपयोग के परिणामस्वरूप आई थीं। विद्वान् अधिकरण ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित कतिपय मामलों का उल्लेख करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां दुर्घटना मोटर यान के उपयोग के परिणामस्वरूप हुई हो और इससे किसी व्यक्ति की मृत्यु हुई हो या शारीरिक क्षतियां पहुंची हों, वहां मोटर यान अधिनियम के अधीन दावा ग्राह्य है। धारा में प्रयुक्त “मोटर यानों के उपयोग से” शब्द यह उपबंधित करते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि दावेदार दुर्घटना करने वाले यान के चालक का उतावलापन और उपेक्षा साबित करे अपितु उसे यह साबित करना चाहिए कि उसे मोटर यान के उपयोग से क्षतियां पहुंची हैं या मृतक की मृत्यु हुई है। जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों ने विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि दावेदार को उस समय क्षतियां पहुंचीं जब दुर्घटना करने वाले ट्रक द्वारा उसे टक्कर मारी गई थी। अतः विद्वान् अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 1 के बारे में निकाले गए निष्कर्ष पूर्णतया विधिक हैं और इसलिए उनमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 13, 14, 16 और 17)

दावेदार को विभिन्न क्षतियां पहुंची हैं, उसकी दोनों टांगों में अस्थिभंग हुआ है और वह अस्पताल में भर्ती रहा है और उसके पश्चात् उसका एक वर्ष की अवधि तक उपचार चला है और वह स्थायी रूप से निःशक्त हो गया है और उसने अपने उपचार पर अत्यधिक धनराशि खर्च की है और वह वर्ष 2003 से अपने अधिकार के लिए लड़ रहा है। तथापि, उसे उसके सिर में दर्द और क्षतियों के लिए 60,000/- रुपए की मामूली धनराशि अधिनिर्णीत की गई है। इसके अतिरिक्त दावेदार इस अवधि के दौरान जीवन की सुविधाओं से भी वंचित रहा है क्योंकि उसका उपचार चल रहा था और दुर्घटना के कारण अनेक मासों तक वह बिस्तर पर रहा था और उसे जीवन की सुविधाओं के नुकसान और सिर दर्द के लिए मात्र 55,000/- रुपए तुच्छ धनराशि अधिनिर्णीत की गई है। अधिकरण ने सिर के चिकित्सीय खर्चों के लिए फाइल पर पेश किए गए बिलों के अनुसार 1,27,000/- रुपए की धनराशि, विशेष खानपान के लिए 10,000/- रुपए की धनराशि और यातायात तथा सेवा कर रहे व्यक्ति के प्रभारों के लिए

18,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की है। तथापि, चूंकि दावेदार ने इसे प्रश्नगत नहीं किया है इसलिए न्यायालय यह उचित समझता है कि इसे कायम रखा जाए। अधिनिर्णीत धनराशि किसी भी दृष्टिकोण से अधिक नहीं है। चूंकि दुर्घटना करने वाला यान अपीलार्थी-बीमाकर्ता द्वारा बीमाकृत था इसलिए अपीलार्थी पर ठीक ही दायित्व अधिरोपित किया गया है। तदनुसार विद्वान् अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 2 के बारे में निकाले गए निष्कर्षों की पुष्टि की जाती है। उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए आक्षेपित अधिनिर्णय पुष्ट किए जाने योग्य है और इसलिए अपील खारिज किए जाने योग्य है। तदनुसार आक्षेपित अधिनिर्णय की पुष्टि की जाती है और अपील खारिज की जाती है। (पैरा 21 और 22)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सी. आई. एम. ए. सं. 5.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील।

अपीलार्थी की ओर से	श्री सी. एस. गुप्ता
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्री सचिन गुप्ता

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – यह सिविल प्रथम प्रकीर्ण अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जम्मू द्वारा तारीख 3 अक्टूबर, 2011 को पारित उस निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जो फाइल संख्या 307/क्लेम परमजीत सिंह बनाम श्रीमती नरेन्द्र कौर और अन्य में पारित किया गया था और जिसके द्वारा मेरे समक्ष के दावेदार-प्रत्यर्थी संख्या 1 के हक में, मेरे समक्ष के अपीलार्थी के विरुद्ध दावा आवेदन फाइल करने की तारीख से वसूली की तारीख तक 7.5 प्रतिशत ब्याज सहित 2,70,000/- रुपए का अधिनिर्णय पारित किया गया है और इस अधिनिर्णीत धनराशि को अपील के ज्ञापन में दिए गए आधारों पर अपीलार्थी पर संदाय करने का दायित्व अधिरोपित किया गया है।

2. हमारे समक्ष का दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 यान दुर्घटना में आहत हुआ था जिसने दावा आवेदन के पैरा 23 में किए गए कथनों के अनुसार 13,05,000/- रुपए की धनराशि के प्रतिकर की मंजूरी के लिए विद्वान् अधिकरण के समक्ष समावेदन किया था।

3. अपीलार्थी-बीमा कंपनी विद्वान् अधिकरण के समक्ष उपस्थित हुई थी और उसने निम्नलिखित प्रारंभिक विवाद्यक विरचित कराया था :-

“क्या दावा आवेदन वर्तमान रूप में ग्राह्य है ? ओ. पी. पी. I”

4. विद्वान् अधिकरण ने तारीख 29 अगस्त, 2005 के आदेश के निबंधनों में उपर्युक्त प्रारंभिक विवाद्यक दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध विनिश्चित करते हुए दावा आवेदन खारिज कर दिया । दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 ने इसे अपील के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत किया जो तारीख 27 अप्रैल, 2007 के आदेश द्वारा अधिकरण को यह निदेश देते हुए मंजूर की गई थी कि वह साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् प्रारंभिक विवाद्यक तथा अन्य विवाद्यक विनिश्चित करे । तदनुसार आवेदन विधि के अनुसार नए सिरे से विचारण के लिए विद्वान् अधिकरण को प्रतिप्रेषित किया गया था ।

5. तदनुसार विद्वान् अधिकरण ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

“1. क्या दुर्घटना करने वाले यान रजिस्ट्रीकरण सं. जे. के. 02 क्यू.-0694 को बारीब्रह्मन पेट्रोल पंप के निकट उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति से दोषी चालक द्वारा चलाए जाने पर तारीख 13 नवंबर, 2002 को घटना घटित हुई जिसमें आवेदक परमजीत सिंह को गंभीर क्षतियां पहुंचीं ? ओ. पी. पी. ।

2. यदि विवाद्यक सं. 1 सकारात्मक रूप में साबित होता है तो क्या आवेदक प्रतिकर के लिए हकदार है ; यदि हां, तो कितनी धनराशि के लिए और किससे ? ओ. पी. पी. ।

3. क्या घटना के समय दुर्घटना करने वाले यान के चालक के पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी और क्या वह यान को बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के उल्लंघन में चला रहा था और क्या यान का सड़क परमिट नहीं था, यदि हां, तो कैसे ? ओ. पी. आर.-2 ।

4. क्या ऐसी कोई घटना नहीं हुई जिसमें आवेदक को शारीरिक क्षति पहुंची जो दावा आवेदन चलाने के लिए अनिवार्य है क्योंकि आवेदक पर उसकी ड्यूटी के निर्वहन के दौरान उसे अपनी ड्यूटी से लोकसेवक के रूप में भयोपरत करने के लिए उस पर हमला किया गया था, यदि हां, तो कैसे और इसका प्रभाव क्या है ? ओ. पी. आर.-2 ।

5. अनुतोष । ओ. पी. पक्षकार ।”

6. दावेदार को साक्ष्य पेश करने के लिए निदेश दिया गया था । उसने पी. डब्ल्यू. सुरजीत सिंह की परीक्षा कराई और वह स्वयं भी अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ । अपीलार्थी-बीमाकर्ता कंपनी ने आर. डब्ल्यू. गुरबचन सिंह और कुलदीप खजूरिया की परीक्षा कराई ।

7. दावा आवेदन में किए गए प्रकथनों के अनुसार जब दावेदार तारीख 13 नवंबर, 2002 को लगभग 10.30 बजे अपराह्न अपनी यातायात ड्यूटी कर रहा था और राष्ट्रीय राजमार्ग पर बारीब्रह्मन पेट्रोल पंप के निकट खड़ा हुआ था तो दुर्घटना करने वाला यान अर्थात् ट्रक सं. जे. के. 02 क्यू.-0694 जिसे उसका चालक अर्थात् गुरबचन सिंह उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था, रेल स्टेशन की ओर से उसकी ओर आया और आवेदक को टक्कर मारी जिसके परिणामस्वरूप आवेदक को विभिन्न क्षतियां पहुंचीं और उसकी दोनों टांगों में अस्थिभंग हुआ । आवेदक-प्रत्यर्थी सं. 1 का कई मासों तक उपचार चला था और वह अब स्थायी रूप से निःशक्त हो गया है । तदनुसार उसने प्रतिकर की मांग करते हुए विद्वान् अधिकरण के समक्ष दावा आवेदन फाइल किया ।

8. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने इस आधार पर आवेदन का विरोध किया कि आवेदक को दुर्घटना करने वाले यान के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाने के कारण क्षतियां नहीं पहुंचीं अपितु वस्तुतः उस पर उक्त चालक ने हमला किया था । इस आशय की एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुलिस थाना बारीब्रह्मन में रजिस्ट्रीकृत की गई थी । तदनुसार सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष चालान प्रस्तुत किया गया था और चालक अर्थात् गुरबचन सिंह को दोषमुक्त किया गया था । अतः यह दावा किया गया है कि दावा आवेदन ग्राह्य नहीं है और अपीलार्थी-बीमा कंपनी का दावे का समाधान करने के लिए किसी प्रकार का कोई दायित्व नहीं है ।

9. दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपने पक्षकथन के समर्थन में पी. डब्ल्यू. सुरजीत सिंह की परीक्षा कराई जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि जब दावेदार बारीब्रह्मन में सड़क पर अपनी ड्यूटी कर रहा था तो दुर्घटना करने वाले यान ने जो पंजाब की ओर से आ रहा था और जिसे इसका चालक उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था, दावेदार को टक्कर मारी

जिसके परिणामस्वरूप उसे क्षतियां पहुंचीं और उसे उसके साथियों द्वारा अस्पताल ले जाया गया। अतः यह दावा किया गया कि दावेदार को पहुंची क्षतियां उस दुर्घटना के परिणामस्वरूप आई थीं जो दुर्घटना करने वाले यान द्वारा कारित की गई थीं।

10. बीमाकर्ता-अपीलार्थी द्वारा परीक्षा कराए गए साक्षी अर्थात् गुरबचन सिंह ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह दुर्घटना करने वाले यान को चला रहा था किंतु उससे यह दुर्घटना नहीं हुई। उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उसे रणबीर दंड संहिता की धारा 353/332 के अधीन पुलिस द्वारा उसके विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत किए गए मामले में दोषमुक्त किया गया है।

11. अपीलार्थी-बीमाकर्ता द्वारा परीक्षा कराए गए दूसरे साक्षी अर्थात् कुलदीप खजूरिया ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि दावेदार को उस समय क्षतियां पहुंचीं जब उसे ट्रक रजिस्ट्रीकरण सं. जे. के. 02 क्यू.-0694 द्वारा टक्कर मारी गई थी जिसे इसका चालक गुरबचन सिंह चला रहा था।

12. अतः फाइल पर इस आशय का कोई साक्ष्य नहीं है कि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 को पहुंची क्षतियां मोटर यान के उपयोग के परिणामस्वरूप नहीं आई थीं।

विवाद्यक सं. 1 :

13. यह सही है कि यह साबित करने के लिए कि फाइल पर कोई पुख्ता साक्ष्य नहीं है कि दुर्घटना करने वाले यान का चालक यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था और उसने दुर्घटना कारित की। तथापि, इसके साथ ही साथ जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, फाइल पर इस आशय का साक्ष्य है कि दावेदार-परमजीत सिंह को उस समय गंभीर क्षतियां पहुंची थीं जब उसे दुर्घटना करने वाले ट्रक द्वारा टक्कर मारी गई थी। अतः दावेदार को पहुंची क्षतियां मोटर यान के उपयोग के परिणामस्वरूप आई थीं।

14. विद्वान् अधिकरण ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित कतिपय मामलों का उल्लेख करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां दुर्घटना मोटर यान के उपयोग के परिणामस्वरूप हुई हो और इससे किसी व्यक्ति की मृत्यु हुई हो या शारीरिक क्षतियां पहुंची हों, वहां मोटर यान अधिनियम के अधीन दावा ग्राह्य है।

15. विद्वान् अधिकरण द्वारा निकाले गए निष्कर्ष पूर्णतया सही हैं । यहां यह उचित होगा कि मोटर यान अधिनियम की धारा 165 को उद्धृत किया जाए, जो इस प्रकार है :-

“165. **दावा अधिकरण** - (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (जिन्हें इस अध्याय में इसके पश्चात् ‘दावा अधिकरण’ कहा गया है) ऐसे क्षेत्र के लिए, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, उन दुर्घटनाओं की बाबत प्रतिकर के दावों के न्यायनिर्णयन के प्रयोजन के लिए गठित कर सकेगी जिनमें मोटर यानों के उपयोग से व्यक्तियों की मृत्यु या उन्हें शारीरिक क्षति हुई है या पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान हुआ है या दोनों बातें हुई हैं ।”

16. धारा में प्रयुक्त “मोटर यानों के उपयोग से” शब्द यह उपबंधित करते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि दावेदार दुर्घटना करने वाले यान के चालक का उतावलापन और उपेक्षा साबित करे अपितु उसे यह साबित करना चाहिए कि उसे मोटर यान के उपयोग से क्षतियां पहुंची हैं या मृतक की मृत्यु हुई है ।

17. जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों ने विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि दावेदार को उस समय क्षतियां पहुंचीं जब दुर्घटना करने वाले ट्रक द्वारा उसे टक्कर मारी गई थी । अतः विद्वान् अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 1 के बारे में निकाले गए निष्कर्ष पूर्णतया विधिक हैं और इसलिए उनमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

विवाद्यक सं. 3 :

18. अपीलार्थी-बीमाकर्ता विवाद्यक सं. 2 साबित नहीं कर सका, अतः वह अपने भार का निर्वहन करने में विफल रहा और तदनुसार यह विवाद्यक अपीलार्थी के विरुद्ध और दावेदार के हक में विनिश्चित किया गया है ।

विवाद्यक सं. 4 :

19. विवाद्यक सं. 1 के संबंध में अभिलिखित निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए यह विवाद्यक भी दावेदार के हक में और अपीलार्थी-बीमाकर्ता के विरुद्ध विनिश्चित किया गया है ।

विवाद्यक सं. 2 :

20. विद्वान् अधिकरण ने अभिवचनों/साक्ष्य और फाइल पर उपलब्ध दस्तावेजों तथा पेश किए गए चिकित्सा बिलों की परीक्षा करने के पश्चात् दावेदार के हक में और अपीलार्थी-बीमाकर्ता के विरुद्ध न्यूनतम संभव

प्रतिकर अधिनिर्णीत किया है ।

21. दावेदार को विभिन्न क्षतियां पहुंची हैं, उसकी दोनों टांगों में अस्थिभंग हुआ है और वह अस्पताल में भर्ती रहा है और उसके पश्चात् उसका एक वर्ष की अवधि तक उपचार चला है और वह स्थायी रूप से निःशक्त हो गया है और उसने अपने उपचार पर अत्यधिक धनराशि खर्च की है और वह वर्ष 2003 से अपने अधिकार के लिए लड़ रहा है । तथापि, उसे उसके सिर में दर्द और क्षतियों के लिए 60,000/- रुपए की मामूली धनराशि अधिनिर्णीत की गई है । इसके अतिरिक्त दावेदार इस अवधि के दौरान जीवन की सुविधाओं से भी वंचित रहा है क्योंकि उसका उपचार चल रहा था और दुर्घटना के कारण अनेक मासों तक वह बिस्तर पर रहा था और उसे जीवन की सुविधाओं के नुकसान और सिर दर्द के लिए मात्र 55,000/- रुपए तुच्छ धनराशि अधिनिर्णीत की गई है । अधिकरण ने सिर के चिकित्सीय खर्चों के लिए फाइल पर पेश किए गए बिलों के अनुसार 1,27,000/- रुपए की धनराशि, विशेष खानपान के लिए 10,000/- रुपए की धनराशि और यातायात तथा सेवा कर रहे व्यक्ति के प्रभारों के लिए 18,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की है । तथापि, चूंकि दावेदार ने इसे प्रश्नगत नहीं किया है इसलिए मैं यह उचित समझता हूं कि इसे कायम रखा जाए । अधिनिर्णीत धनराशि किसी भी दृष्टिकोण से अधिक नहीं है । चूंकि दुर्घटना करने वाला यान अपीलार्थी-बीमाकर्ता द्वारा बीमाकृत था इसलिए अपीलार्थी पर ठीक ही दायित्व अधिरोपित किया गया है । तदनुसार विद्वान् अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 2 के बारे में निकाले गए निष्कर्षों की पुष्टि की जाती है ।

22. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए आक्षेपित अधिनिर्णय पुष्ट किए जाने योग्य है और इसलिए अपील खारिज किए जाने योग्य है । तदनुसार आक्षेपित अधिनिर्णय की पुष्टि की जाती है और अपील खारिज की जाती है ।

23. कार्यालय को इस आदेश की एक प्रति के साथ अभिलेख वापस भेजने का निदेश किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

तेजरिंग नोरबू और अन्य

तारीख 4 नवंबर, 2013

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – जहां दावेदार द्वारा चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाना साबित कर दिया गया हो वहां प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – दावा – प्रतिकर – परिमाण – जहां दावेदार द्वारा अपना पक्षकथन साबित कर दिया गया हो वहां न्यायालय द्वारा विधि के अनुसार समुचित गुणक लागू करके प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – बीमाकृत यान का उपयुक्तता प्रमाणपत्र पर्यवसित होना – जहां बीमा पालिसी के निबंधनों के अतिक्रमण में यान चलाया जा रहा हो वहां भी बीमा कंपनी अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाती – तथापि, बीमा कंपनी संदेय धनराशि बीमाकृत से वसूल करने की हकदार होगी ।

इस अपील द्वारा मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, लेह द्वारा तारीख 31 मई, 2012 को पारित अधिनिर्णय को प्रश्नगत किया गया है । अपील तदनुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी/दावेदार द्वारा परीक्षा किए गए सभी साक्षियों ने यह कहा है कि मृतका टीसेवांग डोलमा की दुर्घटना करने वाला यान (बस) को इसके चालक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में

चलाने के कारण मृत्यु हुई थी। वह एक दुकान चलाती थी और बुनाई का कार्य करके 40,000/- रुपए प्रतिमास कमाती थी। अभिलेख पर के साक्ष्य से यह साबित हो गया है कि दुर्घटना चालक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 2 के उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति से यान चलाने के कारण हुई थी जिसके कारण टीसेवांग डोलमा की मृत्यु हुई। अतः विवाद्यक सं. 1 दावेदार-प्रत्यर्थी के हक में ठीक ही विनिश्चित किया गया है। तदनुसार विवाद्यक सं. 1 के बारे में निकाले गए निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है। (पैरा 6 और 7)

दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 ने साक्ष्य प्रस्तुत करके यह साबित कर दिया है कि मृतका 4,500/- रुपए प्रतिमास कमाती थी। अधिकरण ने कतिपय कटौतियां करने के पश्चात् सरला बानो वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत को लागू करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार-प्रत्यर्थी ने 46,800/- रुपए वार्षिक की दर से अपनी आय का स्रोत खो दिया है। अधिकरण ने भावी संभावनाओं पर 30 प्रतिशत जोड़ने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है। अधिकरण ने मृतक की आयु पर विचार करने के पश्चात् और 17 का गुणक लागू करने के पश्चात् जो कि उच्चतम दर है, यह अभिनिर्धारित किया कि 16 का गुणक न्यायोचित था और मोटर यान अधिनियम से संलग्न अनुसूची के साथ पठित मामले की परिस्थितियों में समुचित गुणक लागू किया। अधिकरण ने आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि दावेदार-प्रत्यर्थी दाह-संस्कार और प्रतितोष के नुकसान के लिए क्रमशः 10,000/- रुपए और 12,500/- रुपए का हकदार है। अतः दावेदार-प्रत्यर्थियों को उपर्युक्त दोनों मदों पर 2,000/- रुपए और 2,500/- रुपए के लिए हकदार माना जाता है। अतः दावेदार-प्रत्यर्थी अधिकरण द्वारा यथा अधिनिर्णीत 6 प्रतिशत ब्याज सहित $46,800 \times 16 = 7,48,800 + 2,000 + 2,500 = 7,53,300/-$ रुपए की धनराशि के लिए हकदार है। (पैरा 8, 9, 11 और 12)

अपीलार्थी-बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसिल ने यह दलील दी कि दुर्घटना करने वाले यान के चालक के पास घटना की तारीख को विधिमान्य अनुज्ञप्ति नहीं थी। अधिकरण के समक्ष इस दलील के समर्थन में पेश किए

गए साक्षी ने अपीलार्थी की इस दलील का कोई समर्थन नहीं किया है, तथापि, उसने यह साक्ष्य दिया है कि उपयुक्तता प्रमाणपत्र विधिमान्य नहीं था। उपयुक्तता प्रमाणपत्र अविधिमान्य होने का आधार प्रतिकर का संदाय करने के लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी को मुक्त नहीं कर सकता। माननीय उच्चतम न्यायालय ने नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम स्वर्ण सिंह वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि यह बीमाकर्ता का कार्य है कि वह तर्कयुक्त साक्ष्य पेश करके यह साबित करे कि बीमाकृत/स्वामी ने जानबूझकर कोई व्यतिक्रम किया है। यह उपदर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य मौजूद नहीं है कि बीमाकृत-स्वामी ने जानबूझकर कोई व्यतिक्रम किया इसलिए विवाद्यक सं. 3 के बारे में निकाले गए निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है। (पैरा 10)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2004] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर.
2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी.
सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 :
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम स्वर्ण सिंह
और अन्य।

10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सी. आई. एम. ए. सं. 131.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील।

अपीलार्थी की ओर से श्री जे. ए. कावूसा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री मोहम्मद इस्माईल

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की अनुपस्थिति को दृष्टिगत करते हुए उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की जाती है।

2. इस अपील द्वारा मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, लेह (जिसे आगे संक्षेप में “अधिकरण” कहा गया है) द्वारा तारीख 31 मई, 2012 को पारित

निर्णय और अधिनिर्णय (जिसे आगे संक्षेप में “आक्षेपित अधिनिर्णय” कहा गया है) को प्रश्नगत किया गया है। अधिकरण के समक्ष दावा याचिका तेजरिंग नोरबू बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी, लेह और अन्यों के नाम से फाइल की गई थी।

संक्षिप्त तथ्य

3. दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 ने इस आधार पर अपने पक्ष में प्रतिकर अधिनिर्णीत करने के लिए यान दुर्घटना के आहत का नातेदार होने के नाते अधिकरण के समक्ष दावा याचिका फाइल की थी कि दुर्घटना करने वाले यान (बस) जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. जे के 01-7696 है, के चालक प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 10 अक्टूबर, 2009 को बस को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति से चलाते हुए टीसेवांग डोलमा की मृत्यु कारित कर दी। घटना के समय मृतक की आयु 28 वर्ष की थी। वह बुनाई का कार्य करके 30,000/- रुपए मासिक अर्जित करती थी। दावेदार-प्रत्यर्थी मृतक के ऊपर निर्भर थे और इन कठिन दिनों में वह अपने घर का खर्च चलाने की स्थिति में नहीं हैं। उसने दावा याचिका के पैरा 12 में दिए गए कारणों के आधार पर 70,00,000/- रुपए (सत्तर लाख रुपए) की धनराशि का प्रतिकर अधिनिर्णीत करने की ईप्सा की थी।

4. दावा याचिका के प्रत्यर्थी उपस्थित हुए थे और उन्होंने दावा याचिका का विरोध किया था। न्यायालय ने अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने के पश्चात् अवधारण के लिए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

“1. क्या मृतक टीसेवांग डोलमा निवासी नीमू, लेह आयु 28 वर्ष की ग्राम बासगो, जिला लेह की दुर्घटना करने वाले यान को जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. जे के 01-7696 है, यान के चालक सकरमा टुंडूप द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति से चलाने के कारण दुर्घटना होने से मृतक की मृत्यु हुई ? ओ. पी. पी.।

2. यदि विवाद्यक सं. 1 सकारात्मक रूप में साबित होता है तो प्रतिकर का परिमाण क्या होगा और याचियों में से कौन इसका

हकदार होगा और किससे ? ओ. पी. पी. ।

3. क्या दुर्घटना करने वाले यान के चालक के पास घटना की तात्विक तारीख को विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी ?

4. अनुतोष ।”

5. दावेदार ने साक्ष्य पेश करने के लिए अवसर देने पर चार साक्षियों की परीक्षा की और वह स्वयं भी अपने साक्षी के रूप में साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ । अपीलार्थी-बीमाकर्ता ने अपनी ओर से ए. आर. टी. ओ. कार्यालय, लेह के ज्येष्ठ सहायक श्री शमीम अहमद की परीक्षा की जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि दुर्घटना करने वाले यान का उपयुक्तता प्रमाणपत्र तारीख 27 मई, 2009 तक ही वैध था ।

6. प्रत्यर्थी/दावेदार परीक्षा किए गए सभी साक्षियों ने यह कहा है कि मृतका टीसेवांग डोलमा की दुर्घटना करने वाला यान (बस) को इसके चालक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के कारण मृत्यु हुई थी । वह एक दुकान चलाती थी और बुनाई का कार्य करके 40,000/- रुपए प्रतिमास कमाती थी ।

विवाद्यकानुसार :

विवाद्यक सं. 1 :

7. अभिलेख पर के साक्ष्य से यह साबित हो गया है कि दुर्घटना चालक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 2 के उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति से यान चलाने के कारण हुई थी जिसके कारण टीसेवांग डोलमा की मृत्यु हुई । अतः विवाद्यक सं. 1 दावेदार-प्रत्यर्थी के हक में ठीक ही विनिश्चित किया गया है । तदनुसार विवाद्यक सं. 1 के बारे में निकाले गए निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है ।

विवाद्यक सं. 2

8. दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 ने साक्ष्य प्रस्तुत करके यह साबित कर दिया है कि मृतका 4,500/- रुपए प्रतिमास कमाती थी । अधिकरण ने कतिपय

कटौतियां करने के पश्चात् सरला बानो वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत को लागू करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार-प्रत्यर्थी ने 46,800/- रुपए वार्षिक की दर से अपनी आय का स्रोत खो दिया है। अधिकरण ने भावी संभावनाओं पर 30 प्रतिशत जोड़ने के पश्चात् उक्त निष्कर्ष निकाला है।

9. अधिकरण ने मृतक की आयु पर विचार करने के पश्चात् और 17 का गुणक लागू करने के पश्चात् जो कि उच्चतम दर है, यह अभिनिर्धारित किया कि 16 का गुणक न्यायोचित था और मोटर यान अधिनियम से संलग्न अनुसूची के साथ पठित मामले की परिस्थितियों में समुचित गुणक लागू किया।

विवाद्यक सं. 3

10. अपीलार्थी-बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि दुर्घटना करने वाले यान के चालक के पास घटना की तारीख को विधिमान्य अनुज्ञप्ति नहीं थी। अधिकरण के समक्ष इस दलील के समर्थन में पेश किए गए साक्षी ने अपीलार्थी की इस दलील का कोई समर्थन नहीं किया है, तथापि, उसने यह साक्ष्य दिया है कि उपयुक्तता प्रमाणपत्र विधिमान्य नहीं था। उपयुक्तता प्रमाणपत्र अविधिमान्य होने का आधार अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रतिकर का संदाय करने के दायित्व से मुक्त नहीं कर सकता। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य**¹ वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि यह बीमाकर्ता का कार्य है कि वह तर्कयुक्त साक्ष्य पेश करके यह साबित करे कि बीमाकृत/स्वामी ने जानबूझकर कोई व्यतिक्रम किया है। यह उपदर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य मौजूद नहीं है कि बीमाकृत-स्वामी ने जानबूझकर कोई व्यतिक्रम किया इसलिए विवाद्यक सं. 3 के बारे में निकाले गए निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है।

11. अधिकरण ने आक्षेपित निर्णय और अधिनिर्णय पारित करते हुए

¹ [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि दावेदार-प्रत्यर्थी दाह-संस्कार और प्रतितोष के नुकसान के लिए क्रमशः 10,000/- रुपए और 12,500/- रुपए का हकदार है । अतः दावेदार-प्रत्यर्थियों को उपर्युक्त दोनों मदों पर 2,000/- रुपए में 2,500/- रुपए के लिए हकदार माना जाता है ।

12. अतः दावेदार-प्रत्यर्थी अधिकरण द्वारा यथा अधिनिर्णीत ब्याज सहित $46,800 \times 16 = 7,48,800 + 2,000 + 2,500 = 7,53,300/-$ रुपए की धनराशि के लिए हकदार है ।

13. निर्णय का परिशीलन करने पर यह प्रकट होता है कि मृतक ने अपने पीछे दो बच्चों और एक पति को छोड़ा है । बच्चे 14 वर्ष और 10 वर्ष की आयु के बताए गए हैं । अतः प्रतिकर सभी दावेदारों को समान भागों में संदेय होगा । बच्चों के भाग को उनकी सावधि जमा में सुरक्षित रखा जाएगा । दावेदारों के हक में प्रतिकर की धनराशि को इस आदेश और आक्षेपित अधिनिर्णय के निबंधनों में निर्मुक्त किया जाएगा ।

14. अतः अपील उपर्युक्त उपांतरण सहित निपटाई जाती है ।

15. निचले न्यायालय का अभिलेख निर्णय की प्रति के साथ वापस भेजा जाए ।

अपील तदनुसार निपटाई गई ।

मह.

साउ कल्पना

बनाम

पंकज सुपादू रोज़तकर

तारीख 10 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति एस. एस. शिंदे

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 24 – सिविल वाद – स्थानांतरण – पति द्वारा पत्नी के आवास से 400 किलोमीटर दूर कल्याण में हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां संस्थित किया जाना – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध जलगांव न्यायालय में अनेक कार्यवाहियां संस्थित किया जाना – स्थानांतरण के मामले में न्यायालय को सुविधा के संतुलन को दृष्टिगत करते हुए स्थानांतरण का आदेश पारित करना चाहिए ।

यह आवेदन सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, कल्याण के न्यायालय के समक्ष लंबित 2007 की हिन्दू विवाह याचिका सं. 161 में याचिका की कार्यवाहियों को सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, जलगांव के न्यायालय में स्थानांतरित करने के लिए फाइल किया गया है । स्थानांतरण आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि कल्याण से जलगांव के बीच की दूरी 400 किलोमीटर से अधिक है । दूरी के अतिरिक्त 4 वर्ष का बालक आवेदक के साथ रहता है । आवेदक इस बालक की देखभाल करती है और इसलिए यदि सुविधा के संतुलन का मूल्यांकन किया जाए तो निश्चित रूप से यह आवेदक के हक में जाता है । इसके अतिरिक्त ऊपर जो उल्लेख किया गया है कि अन्य तीन कार्यवाहियां भी जलगांव में लंबित हैं जिनमें से एक प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित की गई है जो आवेदक के विरुद्ध प्रतिकर के लिए 2011 का विशेष सिविल वाद सं. 208 है । सिविल प्रकीर्ण आवेदन इस सीमा तक मंजूर किया जाता है कि सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, कल्याण के न्यायालय में लंबित 2007 की हिन्दू विवाह याचिका सं. 161 को सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, जलगांव में स्थानांतरित किया जाता है । (पैरा 5 और 6)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2002] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 396 =
(2001) 10 एस. सी. सी. 41 :
सुमिता सिंह बनाम कुमार संजय ।

6

सिविल (प्रकीर्ण) अधिकारिता : 2012 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 53.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 24 के अधीन सिविल प्रकीर्ण आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री विनोद पी. पाटिल
प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री डी. एस. पवार और के. सी. संत

आदेश

न्यायमूर्ति एस. एस. शिंदे – आदेश किया गया । वापसी के निदेश के साथ सूचना भेजी गई । पक्षकारों की सहमति से मामले को अंतिम रूप से सुना जाता है ।

2. यह आवेदन सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, कल्याण के न्यायालय के समक्ष लंबित 2007 की हिन्दू विवाह याचिका सं. 161 याचिका की कार्यवाहियों को सिविल न्यायाधीश ज्येष्ठ खंड, जलगांव के न्यायालय में स्थानांतरित करने के लिए फाइल किया गया है । आवेदन में आवेदक द्वारा मामले के तथ्यों का जिस प्रकार उल्लेख किया गया है उन्हें जहां आवश्यकता होगी, यह न्यायालय उक्त तथ्यों को निर्दिष्ट करेगा । तथापि, यहां यह आवश्यक नहीं है कि इस आवेदन को विनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए तथ्यों को उद्धृत किया जाए ।

3. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि जलगांव और कल्याण के बीच की दूरी 400 किलोमीटर से अधिक है । आवेदक-पत्नी के लिए यह सुविधाजनक होगा कि वह प्रत्यर्थी-पति द्वारा संस्थित कार्यवाहियों में हाजिर होने के लिए जलगांव से कल्याण की यात्रा करे । यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी को पति द्वारा आवेदक के विरुद्ध प्रतिकर के लिए सिविल न्यायालय जलगांव के समक्ष फाइल 2011 को विशेष सिविल वाद सं. 208 इस समय लंबित है । यह दलील दी गई है कि आवेदक द्वारा संस्थित दो अन्य कार्यवाहियां अर्थात् (1) घरेलू हिंसा से

स्त्रियों के संरक्षण के अधीन ; और (2) दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए 2011 की हिन्दू विवाह याचिका सं. 107 जलगांव न्यायालय के समक्ष लंबित हैं। इसके अतिरिक्त यह दलील दी गई है कि 4 वर्ष का पुत्र आवेदक के साथ रह रहा है। अतः आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि सिविल पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किए जाने योग्य है।

4. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी अध्यापक के रूप में कार्य कर रहा है और इसलिए उसके द्वारा कल्याण से जलगांव के लिए यात्रा करना कठिन है। यह दलील दी गई है कि आवेदक-पत्नी ने प्रत्यर्थी और उसके कुटुम्ब के सदस्यों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के उपबंधों का आश्रय लेते हुए दांडिक परिवाद संस्थित किया है।

5. मैंने पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों को सुना। इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि कल्याण से जलगांव के बीच की दूरी 400 किलोमीटर से अधिक है। दूरी के अतिरिक्त 4 वर्ष का बालक आवेदक के साथ रहता है। आवेदक इस बालक की देखभाल करती है और इसलिए यदि सुविधा के संतुलन का मूल्यांकन किया जाए तो निश्चित रूप से यह आवेदक के हक में जाता है। इसके अतिरिक्त ऊपर जो उल्लेख किया गया है कि अन्य तीन कार्यवाहियां भी जलगांव में लंबित हैं जिनमें से एक प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित की गई है जो आवेदक के विरुद्ध प्रतिकर के लिए 2011 का विशेष सिविल वाद सं. 208 है।

6. मामले को इस दृष्टि से देखते हुए और उच्चतम न्यायालय द्वारा **सुमिता सिंह बनाम कुमार संजय**¹ वाले मामले में अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत करते हुए जिसमें उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पति द्वारा संस्थित कार्यवाहियों में पत्नी की सुविधा देखी जानी चाहिए, यह सिविल प्रकीर्ण आवेदन मंजूर किए जाने योग्य है। अतः मैं निम्नलिखित आदेश पारित करता हूं :-

“(1) सिविल प्रकीर्ण आवेदन इस सीमा तक मंजूर किया जाता है कि सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड, कल्याण के न्यायालय में लंबित

¹ ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 396 = (2001) 10 एस. सी. सी. 41.

2007 की हिन्दू विवाह याचिका सं. 161 को सिविल न्यायाधीश ज्येष्ठ खंड, जलगांव में स्थानांतरित किया जाता है ।

(2) कल्याण स्थित संबंधित न्यायालय उपर्युक्त कार्यवाहियों को इस आदेश की प्रति की प्राप्ति से एक सप्ताह के भीतर स्थानांतरित करने के लिए कार्यवाही करेगा ।

(3) उक्त कार्यवाहियों के स्थानांतरण के पश्चात् सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड जलगांव इसका यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र तथापि, आज से एक वर्ष के भीतर निपटाने का प्रयत्न करेगा ।

(4) संबंधित न्यायालय अनावश्यक रूप से पक्षकारों को स्थगन मंजूर नहीं करेगा जब तक कि इसके लिए असाधारण कारण मौजूद न हों ।

(5) यह स्पष्ट किया जाता है कि जहां तक उन कार्यवाहियों का संबंध है जो न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, कल्याण के समक्ष लंबित हैं, यह न्यायालय कोई आदेश पारित नहीं कर रहा है और यह आवेदक पर छोड़ा जाता है कि वह समुचित न्यायालय के समक्ष समुचित कार्यवाहियां करे, यदि आवेदक ऐसा ठीक समझती है ।

(6) सिविल प्रकीर्ण आवेदन उपर्युक्त सीमा तक मंजूर किया जाता है और इसका निपटान किया जाता है । उपर्युक्त निबंधनों में यह अंतरिम आदेश पारित किया जाता है ।”

स्थानांतरण आवेदन मंजूर किया गया ।

मह.

राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन

बनाम

श्रीमती रेखा और अन्य

तारीख 6 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – अपील – जहां निचले न्यायालय द्वारा अपेक्षित अपेक्षाओं और उपलब्ध साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के आधार पर अधिनिर्णय दिया गया हो वहां अपील में ऐसे अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए ।

अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक संख्या 1, भरतपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 23 जनवरी, 2012 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि मृतक वर्ष 2004 में कुशल मजदूर की न्यूनतम मजदूरी दर 2,106/- रुपए दर्शाई गई है, जबकि मृतक कुशल मजदूर नहीं था । अतः किसी भी सूरत में वर्ष 2004 में उसे कुशल मजदूर भी माना जाए तो भी उसकी मासिक आय 2,106/- रुपए से अधिक नहीं मानी जा सकती । किन्तु विद्वन् अधिकरण ने इस तथ्य पर कोई गौर नहीं किया । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है, जो विधिसम्मत नहीं है । न्यायालय ने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया । आक्षेपित निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । आक्षेपित निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त न्यायालय उक्त निर्णय में हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं पाता है । विद्वान् अधिकरण ने विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप

से विवेचन व विश्लेषण करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है, जो पूर्णतया विधिसम्मत है। (पैरा 5 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2008] 2008 ए. सी. सी. 364 :

लक्ष्मी देवी और अन्य बनाम मोहम्मद तब्बर
और अन्य ।

6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की एकलपीठ सिविल विविध
अपील संख्या 1128 और क्रस
आब्जेक्शन सं. 76/2012.

मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2012 को पारित आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री वीरेन्द्र अग्रवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री राजकुमार गोयल

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रस आब्जेक्शन मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक संख्या 1, भरतपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 23 जनवरी, 2012 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है। चूंकि उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं क्रस आब्जेक्शन के अंतर्गत अधिकरण के एक ही निर्णय को चुनौती दी गई है, जिससे इनका निस्तारण एक ही निर्णय के द्वारा किया जा रहा है।

2. आपत्तिकर्तागण की ओर से क्रस आब्जेक्शन के साथ एक प्रार्थनापत्र अंतर्गत धारा 5 समयावधि अधिनियम प्रस्तुत कर क्रस आब्जेक्शन पेश करने में हुई देरी को माफ किए जाने की प्रार्थना की गई है। मैंने उक्त प्रार्थनापत्र में अंकित तथ्यों का अवलोकन किया। मैं प्रार्थनापत्र में अंकित तथ्यों से संतुष्ट हूँ। प्रार्थनापत्र शपथपत्र से समर्थित है। अतः आपत्तिकर्तागण की ओर से प्रस्तुत प्रार्थनापत्र अन्तर्गत धारा 5 समयावधि अधिनियम स्वीकार करते हुए क्रस आब्जेक्शन पेश करने में हुई देरी को

माफ किया जाता है ।

3. प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थागण-क्लेमेन्ट्स ने क्लेम याचिका बहादुर सिंह की वाहन दुर्घटना में मृत्यु हो जाने से इन तथ्यों के साथ पेश की, जिसे मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक संख्या 1, भरतपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 4 नवंबर, 2004 के द्वारा स्वीकार करते हुए क्लेमेंट्स को 2,56,800/- रुपए 6 प्रतिशत सालाना साधारण दर से ब्याज दिलाए जाने का आदेश पारित किया । उक्त आदेश के विरुद्ध राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष अपील पेश करने पर उच्च न्यायालय ने अपील का निस्तारण करते हुए दिनांक 15 जुलाई, 2011 के आदेश द्वारा अपने आदेश में उल्लिखित न्यायिक दृष्टांतों के प्रकाश में विवाद्यक संख्या 2 को निर्णीत किए जाने का निर्देश दिया ।

4. विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक संख्या 1, भरतपुर ने अपने आदेश दिनांक 23 जनवरी, 2012 के द्वारा विवाद्यक संख्या 2 का निर्णय करते हुए क्लेमेंट्स को 3,88,800/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं क्लेमेंट्स की ओर से उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं ।

5. अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि मृतक वर्ष 2004 में कुशल मजदूर की न्यूनतम मजदूरी दर 2,106/- रुपए दर्शाई गई है, जबकि मृतक कुशल मजदूर नहीं था । अतः किसी भी सूरत में वर्ष 2004 में उसे कुशल मजदूर भी माना जाए तो भी उसकी मासिक आय 2,106/- रुपए से अधिक नहीं मानी जा सकती । किन्तु विद्वान् अधिकरण ने इस तथ्य पर कोई गौर नहीं किया । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है, जो विधिसम्मत नहीं है ।

6. जबकि क्लेमेन्ट्स आपत्तिकर्तागण के विद्वान् अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विद्वान् अधिकरण ने अत्यन्त ही क्लेम राशि क्लेमेंट्स को दिलाई है । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण विधि दृष्टांत **लक्ष्मी देवी और अन्य बनाम मोहम्मद तब्बर और अन्य**¹ वाले मामले पर गौर नहीं

¹ 2008 ए. सी. सी. 364.

किया, जिसमें दावेदार की आय 3,000/- रुपए मासिक मानी गई है। अतः क्लेमेंट्स के द्वारा क्लेम की गई राशि दिलाए जाने की प्रार्थना की गई है।

7. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया। आक्षेपित निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया। आक्षेपित निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त मैं उक्त निर्णय में हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं पाता हूँ। विद्वान् अधिकरण ने विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है, जो पूर्णतया विधिसम्मत है।

8. अतः अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील एवं आपत्तिकर्तागण-क्लेमेंट्स की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित क्रास आब्जेक्शन निरस्त किए जाते हैं। अपील के साथ संलग्न स्थगन प्रार्थनापत्र भी निरस्त किया जाता है।

अपील खारिज की गई।

मही./मह.

दिनेश पेडीवाल

बनाम

**अपर जिला न्यायाधीश, (फास्ट ट्रैक) सं. 2, भीलवाड़ा और
अन्य**

तारीख 23 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति विजय बिश्नोई

राजस्थान न्यायालय फीस और वाद मूल्यांकन अधिनियम, 1961 – धारा 24 और 38 – कलक्टर द्वारा फर्म के विरुद्ध वसूली प्रमाणपत्र जारी किया जाना – वादियों द्वारा मांगपत्र के लिए जिम्मेदार न होने की घोषणा के लिए वाद – न्यायालय फीस – जहां वादी द्वारा ऐसी किसी घोषणा का अनुतोष प्रदान करने के लिए वाद संस्थित किया गया हो वहां वादी न्यायालय फीस संदत्त करने के लिए दायी है ।

वर्तमान रिट याचिका द्वारा, याची-वादी ने सिविल मूल वाद सं. 80/2006 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) सं. 2, भीलवाड़ा द्वारा तारीख 24 नवम्बर, 2007 के पारित आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 5-क का विनिश्चय करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि वादपत्र को 50,45,520/- रुपए की न्यायालय फीस के साथ फाइल किया जाना अपेक्षित था और न्यायालय फीस के लिए पहले ही संदत्त की गई धनराशि के समायोजन के पश्चात् एक महीने के भीतर न्यायालय फीस स्टांप की कमी को पूरा करने के लिए वादी को निदेश दिया है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वादियों ने वादपत्र के माध्यम से, केवल इस आशय की घोषणा चाही है कि वे रजिस्ट्रीकृत फर्म माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स के संबंध में कोई ऋण धनराशि चुकाने के लिए दायी नहीं हैं, क्योंकि ऋण केवल उक्त मिल्स के लिए आर. एफ. सी. द्वारा दिया गया था और वादी उक्त संविदा के पक्षकार नहीं थे । याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि वादी केवल इस आशय की घोषणा चाहते हैं कि आर. एफ. सी. द्वारा की गई मांग अवैध है जहां तक यह वादियों से संबंधित है और उन्होंने मांग नोटिस के रद्दकरण की ईप्सा नहीं की है और इन परिस्थितियों में वे उक्त मांग

धनराशि के मूल्यानुसार न्यायालय फीस चुकाने के लिए दायी नहीं हैं। याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि घोषणा के लिए वाद यह लाया गया है कि मांग नोटिस वादियों के ऊपर आबद्धकर नहीं है विशेषतया क्योंकि वादी यह सिद्ध करना चाहते हैं और तीसरे पक्षकार के बीच संव्यवहार के संबंध में उन्हें धमकियां मिली हैं और वे मांग पूरी कराने की स्थिति में नहीं हैं और इसलिए इसे रद्द किया जाए तथा ऐसे मामले में उनके लिए यह उचित उपाय है कि मांग घोषणा की जाए क्योंकि मांग विधिविरुद्ध है जहां तक उनका संबंध है और इसलिए इस मामले में वाद का मूल्यांकन राजस्थान न्यायालय फीस और वाद मूल्यांकन अधिनियम, 1961 की धारा 24 के अनुसार किया गया था, न कि अधिनियम, 1961 की धारा 38 के अनुसार जबकि विद्वान् विचारण न्यायालय ने मामले के उक्त पहलू को विचार में लिए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया है। वादपत्र के कतिपय पैराओं के परिशीलन मात्र से और आदेश के पूर्ववर्ती भाग में उल्लिखित वादपत्र में मांगे गए अनुतोष से यह स्पष्ट होता है कि वादियों ने इस आशय की घोषणा चाही है कि जिला कलक्टर द्वारा किया गया अधिनिर्णय/मांग उनके विरुद्ध निष्प्रभावी घोषित की जाए और इसी प्रकार अधिनिर्णय/मांग को अपास्त किए जाने के आशय से आक्षेपित किया गया है। 1961 के अधिनियम की धारा 38 के साथ संलग्न स्पष्टीकरण स्पष्ट रूप से यह उपबंध करता है कि इस धारा के अर्थ के भीतर किसी अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए किसी वाद को किसी डिक्री को अपास्त करने के लिए वाद समझा जाएगा। विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले के इस पहलू को विचार में लिया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि वादियों ने स्वतः अधिनिर्णय को चुनौती दी है और इस आशय की घोषणा चाही है कि उनके विरुद्ध अधिनिर्णय निष्प्रभावी घोषित किया जाए, इसलिए वादी अधिनिर्णय की धनराशि पर न्यायालय फीस संदत्त करने के लिए दायी है। आक्षेपित आदेश के परिशीलन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विचारण न्यायालय ने आरंभिक विवाद्यक के रूप में न्यायालय फीस में कमी के संबंध में विवाद्यक सं. 5-क का विनिश्चय करने की कार्यवाही की है। उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि याची और प्रतिवादी सं. 5 द्वारा फाइल किए गए वादपत्र को संपूर्णतः पढ़ने से और विशिष्ट रूप से अपने विरुद्ध जारी अधिनिर्णय को उनके द्वारा चुनौती देने को दृष्टिगत करते हुए यह

अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि विचारण न्यायालय ने अधिनिर्णय/निर्णय में उल्लिखित 50,40,520/- रुपए की धनराशि पर न्यायालय फीस का संदाय करने के लिए वादियों को निदेश देने में कोई अवैधता कारित की है जैसा कि अधिनिर्णय/निर्णय में उल्लिखित है, और इसलिए, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 6, 12, 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	2008 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2480 : कर्नाटक राज्य वित्त निगम बनाम एन. नरसिंहमय्या और अन्य ;	8, 13
[2008]	2008 की एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 3499, तारीख 27 मई, 2008 को विनिश्चित : मोती लाल साहू बनाम ए. डी. जे. सं. 3, उदयपुर और एक अन्य ;	9, 11
[2008]	2008 की एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 6567, तारीख 29 जनवरी, 2009 को विनिश्चित : कमल सर्राफ़ बनाम राजस्थान वित्त निगम ;	10
[2006]	ए. आई. आर. 2006 छत्तीसगढ़ 104 : वीरेन्द्र कुमार शुक्ला बनाम यूको बैंक और अन्य ;	9
[1995]	1995 डी. एन. जे. (राज.) 38 : खेमा और अन्य बनाम श्री भगवान और अन्य ;	8, 13
[1973]	डब्ल्यू. एल. एन. 1973 (भाग 1), 561 : शान्ति लाल अग्रवाल बनाम श्रीमती रमाबाई और अन्य ;	7, 12
[1958]	ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 245 : सत्तप्पा चेतियार बनाम रामनाथन चेतियार ;	9, 11
[1957]	आर. एल. डब्ल्यू. 1957, पृष्ठ 126 : समदुखान बनाम राजस्थान राज्य ;	10
[1954]	आर. एल. डब्ल्यू. 1954, पृष्ठ 156 : सुखलाल बनाम देवीलाल ।	7, 12

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2008 की सिविल रिट याचिका सं. 115.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से

श्री के. सी. समदरिया

प्रत्यर्थियों की ओर से

श्री रजत दवे

न्यायमूर्ति विजय बिश्नोई – वर्तमान रिट याचिका द्वारा, याची-वादी ने सिविल मूल वाद सं. 80/2006 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, (फास्ट ट्रैक) सं. 2, भीलवाड़ा (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'विचारण न्यायालय' कहा गया है) द्वारा तारीख 24 नवम्बर, 2007 के पारित उस आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 5-क का विनिश्चय करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि वादपत्र को 50,45,520/- रुपए की न्यायालय फीस के साथ फाइल किया जाना अपेक्षित था और न्यायालय फीस के लिए पहले ही संदत्त की गई धनराशि के समायोजन के पश्चात् एक महीने के भीतर न्यायालय फीस स्टॉप की कमी को पूरा करने के लिए वादी को निदेश दिया है ।

2. याची और प्रत्यर्थी सं. 5 ने विचारण न्यायालय में वाद फाइल किया और यह अभिकथन किया कि माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स, भीलवाड़ा ने राजस्थान वित्त निगम (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'आर. एफ. सी.' कहा गया है) से उद्योग को स्थापित करने के प्रयोजन के लिए ऋण लिया था । यह अभिकथन किया गया है कि माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स, भीलवाड़ा एक रजिस्ट्रीकृत साझेदारी फर्म है जिसमें स्व. श्री ओम प्रकाश पेडीवाल दो अन्य व्यक्तियों के साथ साझेदार था और उक्त साझेदारी फर्म द्वारा उद्योग स्थापित करने के लिए ऋण लिया गया था । यह भी अभिकथन किया गया है कि ऋण-धनराशि का संदाय न करने के कारण, उद्योग को आर. एफ. सी. द्वारा अपने नियंत्रण में लिया गया और उसे विक्रीत किया गया था और आर. एफ. सी. द्वारा प्राप्त की गई धनराशि को ऋण धनराशि में समायोजित कर लिया गया था । यह भी अभिकथन किया है कि श्री ओम प्रकाश पेडीवाल की मृत्यु के कारण साझेदारी फर्म विघटित हो गई परन्तु आर. एफ. सी. के शाखा कार्यालय से वादियों को एक नोटिस प्राप्त हुआ जिसके द्वारा उन्हें पन्द्रह दिनों की अवधि के भीतर 50,42,520/- रुपए की ऋण धनराशि जमा करने के लिए कहा गया था जिसका उन्होंने

रजिस्ट्रीकृत डाक के माध्यम से यह उत्तर दिया कि श्री ओम प्रकाश पेडीवाल की किसी चल व अचल संपत्ति छोड़े बिना ही मृत्यु हो गई है और वादी-प्रत्यर्थी माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स की ऋण धनराशि चुकाने के लिए उत्तरदायी नहीं हैं क्योंकि वे उक्त उद्योग से कुछ भी सरोकार नहीं रखते हैं और यह एक साझेदारी फर्म थी जो श्री ओम प्रकाश पेडीवाल की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गई । वादपत्र में यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-आर. एफ. सी. ने कलक्टर को अधिनिर्णय/मांग नोटिस भेज कर अवैधता की है जिसके आधार पर कलक्टर ने 50,42,520/- रुपए की ऋण धनराशि को पन्द्रह दिनों के भीतर चुकाने के लिए उनको नोटिस जारी किया है और वादियों को यह आशंका है कि उक्त मांग के आधार पर कलक्टर वादियों की निजी संपत्ति कुर्क करा सकता है और इसलिए, उन्होंने घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए यह वादपत्र फाइल किया है । वादपत्र में किए गए सुसंगत प्रकथन इस प्रकार हैं :-

“3. यह कि राजस्थान वित्त निगम के ब्रांच कार्यालय भीलवाड़ा से वादीगण को स्व. ओम प्रकाश के विधिक उत्तराधिकारीगण होने से वह बताते हुए कि सूचनापत्र अंतर्गत धारा 32 (बत्तीस) जी. एस. एफ. सी. ऐक्ट दिनांक 9.5.2006 (नौ मई दो हजार छह) को रजिस्टर्ड डाक से प्राप्त हुआ कि माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स, भीलवाड़ा के जिम्मे ऋण की राशि बकाया राशि 50,42,520/- (पचास लाख बयालीस हजार पांच सौ बीस रुपए) बकाया है जिसके 15 (पन्द्रह) योम में जमा न कराने पर धारा 32 जी. एस. एफ. सी. ऐक्ट के अन्तर्गत कार्यवाही की जाएगी । उक्त नोटिस का जवाब वादीगण की ओर से जरिए रजिस्टर्ड डाक दिनांक 15.5.2006 (पन्द्रह मई दो हजार छह) को प्रेषित कर दिया कि ओम प्रकाश पेडीवाल जो फर्म में भागीदार थे, उनकी मृत्यु हो चुकी है तथा माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स साझेदार फर्म से वादीगण को कोई लेना देना नहीं था । यह भी सूचित किया गया कि स्व. ओम प्रकाश पेडीवाल अपनी मृत्यु के समय वादीगण के पास उनकी कोई चल/अचल सम्पत्ति छोड़कर नहीं गए थे और न स्व. ओम प्रकाश पेडीवाल की कोई चल व अचल संपत्ति वादीगण के पास ही है । इसलिए वादीगण माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स की किसी भी देनदारी की अदायगी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं ।

4. यह कि प्रतिवादी क्रम तीन द्वारा भी रजिस्टर्ड डाक से एक लीगल नोटिस यह अंकित करते हुए वादीगण को दिनांक 6.6.2006 (छह जून दो हजार छह) को भेजा कि भीलवाड़ा ब्रांच से अन्तर्गत धारा 32 जी. एस. एफ. सी. ऐक्ट वादीगण को प्रेषित किया जा चुका है उसके संबंध में वे कोई आपत्ति करना चाहें तो दिनांक 20.6.2006 (बीस जून दो हजार छह) तक कर सकते हैं । जिसका जवाब वादीगण की ओर से रजिस्टर्ड डाक से दिनांक 9 जून, 2006 को भेज दिया कि भागीदार ओम प्रकाश की मृत्यु हो चुकी है, वादीगण के पास स्व. ओम प्रकाश की कोई चल व अचल संपत्ति नहीं है और न ही स्व. ओम प्रकाश ने कोई चल/अचल संपत्ति वादीगण के पास छोड़ी ही है । इस जवाब की कापी प्रतिवादी संख्या एक के मुख्य कार्यालय रीजनल ऑफिस अजमेर व ब्रांच कार्यालय भीलवाड़ा को भेजी गई थी ।

5. यह कि जिला कलक्टर (वसूली) भीलवाड़ा से एक मांगपत्र दिनांक 30 जून, 2006 के जरिए तहसीलदार महोदय भीलवाड़ा वादीगण को माह जुलाई, 2006 (दो हजार छह) के पहले सप्ताह में प्राप्त हुआ है, जिसमें यह अंकित किया गया है कि राजस्थान वित्त निगम की राशि 50,42,529/- रुपए (पचास लाख बयालीस हजार पांच सौ उनतीस रुपए) व ब्याज की रकम बकाया है जो राशि आप 15 (पन्द्रह) योम में उनके यहां उपस्थित होकर जमा कराएं । अन्यथा वसूली हेतु वादीगण की संपत्ति कुर्की कर विक्रय का अधिकार पत्र जारी किया जाएगा । उक्त मांग पत्र मिलने के बाद वादीगण को यह आशंका हो गई है कि प्रतिवादी क्रम एक वादीगण की निजी संपत्ति को कुर्क कर नीलाम कर देंगे इसलिए निम्न कारणों से यह वाद घोषणा व स्थायी निषेधाज्ञा की बाबत पेश किया जा रहा है :-

“(1) यह कि उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि वादीगण के जिम्मे निजी रूप से कोई राशि राजस्थान वित्त निगम की न तो बकाया थी और न ही बकाया है । इसलिए वादीगण की कोई भी व्यक्तिगत चल/अचल संपत्ति इस मांग पत्र के अंतर्गत काबिल कुर्की व नीलामी के नहीं है ।

(2) यह कि राजस्थान वित्त निगम ने जानबूझकर सही तथ्यों को छिपाते हुए इस प्रकार का अर्वाड जिला कलक्टर को

बनाकर भेज दिया जैसे वादीगण के जिम्मे निजी रूप से कोई राशि बकाया हो या वादीगण द्वारा व्यक्तिगत रूप से राशि देय हो। जबकि ऋण माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स साझेदारी फर्म ने लिया था जिससे वादीगण का न तो कोई संबंध था और न वादीगण उसमें साझेदार ही थे। ऐसा जारी किया हुआ अवार्ड भी न केवल गलत है बल्कि सही स्थिति को छिपाते हुए व मनमाने ढंग से जारी किए जाने से कानूनन अवैध है। ऐसे अवार्ड की पालना में जिला कलक्टर भीलवाड़ा को वादीगण के विरुद्ध या उनकी निजी संपत्ति के विरुद्ध कोई कुर्की या नीलामी की कार्यवाही करने का अधिकार नहीं है।

3. यह कि माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स, भीलवाड़ा के साझेदार स्व. ओम प्रकाश पेडीवाल के निधन के बाद उनके उत्तराधिकारी होने से वादीगण का दायित्व धारा 50 (पचास) व धारा 52 (बावन) जा. दी. में दिए गए प्रावधानों के अतिरिक्त नहीं आता है। जिसमें धारा 50(2) जा. दी. यह प्रावधान है कि उत्तराधिकारी उसी हद तक जिम्मेदार होंगे जिस सीमा तक मृतक ने कोई संपत्ति उत्तराधिकारी के हाथों में सौंपी हो, यही स्थिति धारा 52 (बावन) जा. दी. में है। इस प्रकार वादीगण व्यक्तिगत रूप से एवं वादीगण की व्यक्तिगत संपत्ति जो उनकी स्वअर्जित है माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स या ओम प्रकाश पेडीवाल के दायित्वों को चुकाने के लिए दायी नहीं है। वादीगण का कथन है कि और इस बारे में प्रतिवादीगण को सूचित भी कर दिया गया था, कि वादीगण के पास स्व. ओम प्रकाश पेडीवाल ने अपनी मृत्यु के समय कोई चल व अचल संपत्ति नहीं छोड़ी थी और न वर्तमान में वादीगण के पास है। स्व. ओम प्रकाश पेडीवाल की कोई चल व अचल संपत्ति नहीं है। इसलिए उपरोक्त मांगपत्र की क्रियान्विती वादीगण की संपत्ति के संबंध में नहीं की जा सकती।”

6. यह कि प्रतिवादी संख्या तीन द्वारा जारी किया गया अवार्ड/प्रमाणपत्र जिसकी प्रतिलिपि किसी प्रतिवादीगण ने वादीगण को नहीं भेजी है और न वादीगण को प्राप्त ही हुई है, अवैध होकर वादीगण पर पाबन्दकारी नहीं है। क्योंकि –

“1. धारा 32 (बत्तीस) जी. की कार्यवाही के संबंध में 32 जी. का नोटिस प्रतिवादी क्रम तीन ने अपने अधिकारों का उपयोग करते हुए नहीं भेजा बल्कि भीलवाड़ा ब्रांच मैनेजर ने भेजा । जिसे धारा 32 जी. के तहत कोई अधिकार राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त किए हुए नहीं हैं ।

2. राज्य सरकार ने धारा 32 जी. एस. एफ. सी. ऐक्ट के अन्तर्गत प्रतिवादी क्रम तीन को अधिकृत करते समय एक पूर्ववर्ती शर्त रखी थी कि वे राज्य सरकार द्वारा जो प्रक्रिया बनाई हुई है, उस विहित प्रक्रिया को अपनाए जाने के बाद ही प्रमाणपत्र जारी कर सकेंगे । इस प्रकरण में प्रतिवादी क्रम 3 ने राज्य सरकार द्वारा जारी की गई विहित प्रक्रिया को कतई नहीं अपनाया है ।

3. कि वादीगण को प्रतिवादी क्रम 3 ने प्रमाणपत्र जारी करने से पूर्व कोई समुचित सुनवाई का अवसर नहीं दिया जबकि वादीगण ने उनके नोटिस का लिखित जवाब प्रेषित कर दिया था । उस जवाब को प्रतिवादी क्रम 3 ने नजरअन्दाज कर व वादीगण को बिना सुने अवार्ड/प्रमाणपत्र जारी कर दिया ।”

7. यह कि उपरोक्त कारणों से वादीगण राजस्थान वित्त निगम को कोई भी राशि अदा करने के लिए जिम्मेदार न होने से वादीगण उनके विरुद्ध जारी किए गए प्रतिवादी संख्या 3 के प्रमाणपत्र/अवार्ड के अवैध होने से वादीगण के विरुद्ध उसके आधार पर कोई कार्यवाही प्रतिवादीगण संख्या 2 व 3 नहीं कर सकते ऐसी घोषणा वादीगण पाने के अधिकारी हैं ।

8. यह कि वादीगण प्रतिवादीगण के विरुद्ध इस अमर की स्थायी निषेधाज्ञा भी उपरोक्त कारणों से पाने के अधिकारी हैं कि वादीगण का कोई दायित्व राजस्थान वित्त निगम की कोई बकाया राशि चुकाने का न होने से प्रतिवादीगण वादीगण की किसी भी अचल व चल संपत्ति को न तो कुर्क करें या नीलाम ही करें । और न वादीगण के विरुद्ध किसी प्रकार की कोई वसूली की कार्यवाही नहीं करें.....।”

3. वादपत्र में अनुरोध किए गए खंड इस प्रकार हैं :-

“1. कि बहक वादीगण विरुद्ध प्रतिवादी क्रम 2 व 3 इस अमर की घोषणात्मक डिक्री सादिर फरमावें कि माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स, भीलवाड़ा के ऋण की अदायगी के लिए वादीगण किसी भांति जिम्मेदार न होने से उनके विरुद्ध पारित किया गया अवार्ड/प्रमाणपत्र जो प्रतिवादी क्रम 1 को भेजा गया, अवैध होकर वादीगण के प्रति बेअसर है ।

2. कि बहक वादीगण विरुद्ध प्रतिवादीगण इस अमर की स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री सादिर फरमावें कि प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा जारी अवार्ड प्रमाणपत्र व प्रतिवादी क्रम 1 द्वारा जारी मांगपत्र दिनांक 30.6.2006 (तीस जून दो हजार छह) के अन्तर्गत प्रतिवादीगण वादीगण की किसी भी चल व अचल संपत्ति को न तो कुर्क करें न नीलाम ही करें व न विक्रय करें और वादीगण के विरुद्ध ऐसी किसी भी राशि की वसूली की कार्यवाही नहीं करें ।

3. कि खर्चा मुकदमा मेहनताना वकील वादीगण को प्रतिवादीगण से दिलवाया जाए एवं अन्य कोई दाद जो मुफीद वादीगण बरामद हो, प्रदान कराएं ।”

4. वादियों के दावे का विरोध करते हुए, आर. एफ. सी. ने अपना लिखित कथन फाइल किया जिसमें न्यायालय फीस की कमी के संबंध में आक्षेप का प्रश्न भी उठाया और विद्वान् विचारण न्यायालय ने एक अतिरिक्त विवाद्यक सं. 5-क विरचित किया कि “क्या वाद का मूल्यांकन उचित रूप से नहीं किया गया है और न्यायालय फीस अपर्याप्त है ?”

5. तत्पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रारंभिक विवाद्यक सं. 5-क का विनिश्चय करने की कार्यवाही की और दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् एक महीने के भीतर 50,42,520/- रुपए की न्यायालय फीस का संदाय करने के लिए वादियों को निदेश देते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया । दोनों वादियों में से केवल एक वादी अर्थात् याची दिनेश पेडीवाल ने यह रिट याचिका फाइल करके तारीख 24 अक्टूबर, 2007 के आदेश को चुनौती दी है ।

6. याची के विद्वान् काउंसिल ने यह दलील दी है कि वादियों ने वादपत्र के माध्यम से, केवल इस आशय की घोषणा चाही है कि वे रजिस्ट्रीकृत फर्म माहेश्वरी टेक्सटाइल मिल्स के संबंध में कोई ऋण

धनराशि चुकाने के लिए दायी नहीं हैं, क्योंकि ऋण केवल उक्त मिल्स के लिए आर. एफ. सी. द्वारा दिया गया था और वादी उक्त संविदा के पक्षकार नहीं थे। याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि वादी केवल इस आशय की घोषणा चाहते हैं कि आर. एफ. सी. द्वारा की गई मांग अवैध है जहां तक यह वादियों से संबंधित है और उन्होंने मांग नोटिस के रद्दकरण की ईप्सा नहीं की है और इन परिस्थितियों में वे उक्त मांग धनराशि के मूल्यानुसार न्यायालय फीस चुकाने के लिए दायी नहीं हैं। याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि घोषणा के लिए वाद यह लाया गया है कि मांग नोटिस वादियों के ऊपर आबद्धकर नहीं है विशेषतया क्योंकि वादी यह सिद्ध करना चाहते हैं और तीसरे पक्षकार के बीच संव्यवहार के संबंध में उन्हें धमकियां मिली हैं और वे मांग पूरी कराने की स्थिति में नहीं हैं और इसलिए इसे रद्द किया जाए तथा ऐसे मामले में उनके लिए यह उचित उपाय है कि मांग घोषणा की जाए क्योंकि मांग विधिविरुद्ध है जहां तक उनका संबंध है, और इसलिए इस मामले में वाद का मूल्यांकन राजस्थान न्यायालय फीस और वाद मूल्यांकन अधिनियम, 1961 (जिसे इसमें इसके पश्चात् “1961 का अधिनियम” कहा गया है) की धारा 24 के अनुसार किया गया था, न कि अधिनियम, 1961 की धारा 38 के अनुसार जबकि विद्वान् विचारण ने मामले के उक्त पहलू को विचार में लिए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया है।

7. याची के विद्वान् काउंसेल ने उपरोक्त दलील के समर्थन में, इस न्यायालय द्वारा **सुखलाल** बनाम **देवीलाल**¹ और **शान्ति लाल अग्रवाल** बनाम **श्रीमती रमाबाई और अन्य**² वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लिया है।

8. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि प्रतिवादी-आर. एफ. सी. को विरोध करने का अधिकार नहीं था और उसे कम न्यायालय फीस के संदाय के संबंध में आपत्ति करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती और ऐसी आपत्ति करने का अधिकार केवल राज्य सरकार को ही है। याची के विद्वान् काउंसेल ने इस दलील के समर्थन में, इस

¹ आर. एल. डब्ल्यू. 1954, पृष्ठ 156.

² डब्ल्यू. एल. एन. 1973, (भाग 1), 561.

न्यायालय द्वारा **खेमा और अन्य** बनाम **श्री भगवान और अन्य**¹ वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है। याची के विद्वान् काउंसेल ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **कर्नाटक राज्य वित्त निगम** बनाम **एन. नरसिंहमय्या और अन्य**² वाले मामले में दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया है और यह दलील दी है कि आर. एफ. सी. द्वारा राज्य वित्त निगम अधिनियम की धारा 32 के अधीन जारी किया गया नोटिस विधि की दृष्टि में भी सही नहीं है क्योंकि यह नोटिस उचित प्रक्रिया अपनाए बिना जारी किया गया था, जबकि विद्वान् विचारण न्यायालय ने मामले के इन सभी पहलुओं को विचार में नहीं लिया है और तारीख 24 अक्टूबर, 2007 को पारित आदेश विधिविरुद्ध है।

9. इसके प्रतिकूल आर. एफ. सी. के विद्वान् काउंसेल श्री रजत दवे ने रिट याचिका के उत्तर में उठाए गए प्रारंभिक आक्षेपों के संबंध में यह दलील दी है कि वादपत्र के मात्र पढ़ने से और याची तथा प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा प्रस्तुत किए गए वादपत्र में मांगे गए अनुतोष से यह स्पष्ट होता है कि वादियों ने अपने विरुद्ध दिए गए अधिनिर्णय/मांग को चुनौती दी है और इसलिए 1961 के अधिनियम की धारा 38 के उपबंधों के अनुसार, 50,42,520/- रुपए की धनराशि पर न्यायालय फीस संदत्त की गई थी और विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 24 अक्टूबर, 2007 के आदेश को पारित करते हुए उसे संदाय करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है। प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने माननीय उच्चतम न्यायालय, छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा **सत्तप्पा चेतियार** बनाम **रामनाथन चेतियार**³; **वीरेन्द्र कुमार शुक्ला** बनाम **यूको बैंक और अन्य**⁴ तथा **मोती लाल साहू** बनाम **ए. डी. जे. सं. 3, उदयपुर और एक अन्य**⁵ वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लिया है और यह दावा किया है कि वादपत्र को संपूर्णतः पढ़ने से दावा किए अनुतोष की सही प्रकृति स्पष्ट होती है और वादपत्र फाइल करने का वास्तविक आशय अस्पष्ट हो जाता है।

¹ 1995 डी. एन. जे. (राज.) 38.

² 2008 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2480.

³ ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 245.

⁴ ए. आई. आर. 2006 छत्तीसगढ़ 104.

⁵ 2008 की एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 3499, तारीख 27 मई, 2008 को विनिश्चित।

10. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि वादियों ने वाद के जरिए अपने विरुद्ध अधिनिर्णय/मांग की घोषणा अवैध घोषित करने का दावा किया है और इसलिए वादी अधिनिर्णय/मांग में उल्लिखित धनराशि पर न्यायालय फीस का संदाय करने के दायी हैं। प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने उपरोक्त दलील के समर्थन में, इस न्यायालय द्वारा **समदुखान बनाम राजस्थान राज्य¹** वाले मामले और **कमल सर्राफ बनाम राजस्थान वित्त निगम²** वाले मामले में दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लिया है।

11. इस न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया और याची-वादी तथा प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा प्रस्तुत किए गए वादपत्र का परिशीलन किया। विधि की यह सुस्थापित प्रतिपादना है जैसा कि **सत्तप्पा चेतियार बनाम रामनाथन चेतियार³** और **मोती लाल साहू बनाम ए. डी. जे. सं. 3, उदयपुर और एक अन्य⁴** वाले मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है कि उचित न्यायालय फीस पता लगाने के प्रयोजन के लिए वादपत्र में किए गए अभिकथनों और वादपत्र में मांगे गए अनुतोष को विचार में लिया जाना चाहिए क्योंकि वादपत्र को संपूर्णतः पढ़ने से दावा किए गए अनुतोष की सही प्रकृति और वादपत्र फाइल करने का वास्तविक आशय स्पष्ट हो जाता है।

12. वादपत्र के कतिपय पैराओं के परिशीलन मात्र से और आदेश के पूर्ववर्ती भाग में उल्लिखित वादपत्र में मांगे गए अनुतोष से यह स्पष्ट होता है कि वादियों ने इस आशय की घोषणा चाही है कि जिला कलक्टर द्वारा किया गया अधिनिर्णय/मांग उनके विरुद्ध निष्प्रभावी घोषित की जाए और इसी प्रकार अधिनिर्णय/मांग को अपास्त किए जाने के आशय से इसे आक्षेपित किया गया है। 1961 के अधिनियम की धारा 38 के साथ संलग्न स्पष्टीकरण स्पष्ट रूप से यह उपबंध करता है कि इस धारा के अर्थ के भीतर किसी अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए किसी वाद की डिक्री को अपास्त करने के लिए वाद समझा जाएगा। विद्वान् विचारण न्यायालय

¹ आर. एल. डब्ल्यू. 1957, पृष्ठ 126.

² 2008 की एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 6567, तारीख 29 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

³ ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 245.

⁴ 2008 की एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 3499, तारीख 27 मई, 2008 को विनिश्चित।

ने मामले के इस पहलू को विचार में लिया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि वादियों ने स्वतः अधिनिर्णय को चुनौती दी है और इस आशय की घोषणा चाही है कि उनके विरुद्ध अधिनिर्णय निष्प्रभावी घोषित किया जाए, इसलिए वादी अधिनिर्णय की धनराशि पर न्यायालय फीस संदत्त करने के लिए दायी हैं। विधि की इस प्रतिपादना के बारे में कोई संदेह नहीं है जैसाकि इस न्यायालय ने **सुखलाल बनाम देवी लाल¹** और **शांति लाल अग्रवाल बनाम श्रीमती रमाबाई और अन्य²** वाले मामलों में अधिकथित किया गया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अधिकथित किया है कि जहां वादी ने किसी हक को सिद्ध करने की ईप्सा की है और किसी डिक्री संव्यवहार द्वारा स्वयं व्यथित होना बताया है और वह उस डिक्री को या विलेख को संपूर्णतः रद्द कराने की स्थिति में नहीं है तो उस मामले में वह केवल इस घोषणा की ईप्सा कर सकता है कि जहां तक उसका संबंध है ऐसी डिक्री या विलेख अवैध है और इस मामले में, न्यायालय फीस डिक्री, विलेख या संव्यवहार में अन्तर्वलित धनराशि उस पर संदत्त नहीं है किन्तु वर्तमान मामले में, याची और प्रत्यर्थी सं. 5 ने कलक्टर द्वारा उनके विरुद्ध पारित किए गए अधिनिर्णय को चुनौती दी है और इसलिए, उपर्युक्त निर्दिष्ट विनिश्चय वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू नहीं होते हैं और भिन्न हैं। यह प्रश्न कि क्या माहेश्वरी मिल्स और आर. एफ. सी. के बीच संव्यवहार के आधार पर वादी के विरुद्ध ऐसा कोई अधिनिर्णय पारित किया जा सकता है, विचारण में विचार किए जाने और विनिश्चित किए जाने का प्रश्न है, किन्तु जब वादियों ने वादपत्र के द्वारा अपने विरुद्ध जारी किए गए अधिनिर्णय/मांग की वैधता को चुनौती दी है तो वे अधिनिर्णय/मांग में अन्तर्वलित धनराशि पर न्यायालय फीस का संदाय करेंगे।

13. आक्षेपित आदेश के परिशीलन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विचारण न्यायालय ने आरंभिक विवाद्यक के रूप में न्यायालय फीस में कमी के संबंध में विवाद्यक सं. 5-क का विनिश्चय करने की कार्यवाही की है और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा **खेमा और अन्य बनाम श्री भगवान और अन्य³** वाले मामले में दिया गया निर्णय इस मामले के तथ्यों को लागू नहीं होता है क्योंकि पूर्वोक्त मामले में, इस न्यायालय ने

¹ आर. एल. डब्ल्यू. 1954, पृष्ठ 156.

² डब्ल्यू. एल. एन. 1973 (भाग 1), 561.

³ 1995 डी. एन. जे. (राज.) 38.

यह अभिनिर्धारित किया है कि राज्य सरकार के सिवाय, कोई अन्य प्रतिवादी न्यायालय फीस में कमी के प्रश्न को नहीं उठा सकता है किन्तु इसमें कहीं भी यह अभिनिर्धारित नहीं किया गया है कि यदि ऐसा कोई विवाद्यक पहले से विरचित किया जा चुका है तो विचारण न्यायालय आरंभिक विवाद्यक के रूप में इसका विनिश्चय नहीं कर सकता है। यह प्रश्न कि क्या राज्य वित्त निगम अधिनियम की धारा 32 के अधीन आर. एफ. सी. द्वारा जारी किया गया नोटिस प्रक्रिया का अनुसरण करने के बाद जारी किया गया था या नहीं, एक ऐसा प्रश्न है जो विचारण न्यायालय द्वारा विचारण में विनिश्चित किया जाएगा और इसलिए, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **कर्नाटक राज्य वित्त निगम बनाम एन. नरसिंहमय्या और अन्य**¹ वाले मामले में दिया गया निर्णय याची को कोई सहायता नहीं पहुंचाता विशेषतया उस प्रक्रम पर जब विचारण न्यायालय ने न्यायालय फीस में कमी के संबंध में आरंभिक विवाद्यक का विनिश्चय कर दिया है और जिसकी वैधता की इस न्यायालय द्वारा परीक्षा की गई है।

14. उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि याची और प्रतिवादी सं. 5 द्वारा फाइल किए गए वादपत्र को संपूर्णतः पढ़ने से और विशिष्ट रूप से अपने विरुद्ध जारी अधिनिर्णय को उनके द्वारा चुनौती देने को दृष्टिगत करते हुए यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि विचारण न्यायालय ने अधिनिर्णय/निर्णय में उल्लिखित 50,40,520/- रुपए की धनराशि पर न्यायालय फीस का संदाय करने के लिए वादियों को निदेश देने में कोई अवैधता कारित की है जैसाकि अधिनिर्णय/निर्णय में उल्लिखित है, और इसलिए, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसलिए याची द्वारा फाइल की गई इस रिट याचिका को खारिज किया जाता है।

रिट याचिका खारिज की गई।

मही./मह.

¹ 2008 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2480.

नाथूदान मार्फत विधिक प्रतिनिधि

बनाम

तहसीलदार, ओसियां और अन्य

तारीख 9 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी

राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 – धारा 58 और 207 [सपटित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 7, नियम 11] – भूमि का कब्जा – समर्पण – प्रत्यर्पण के लिए वाद – सिविल न्यायालय की अधिकारिता – जहां किसी काश्तकार द्वारा भू-स्वामी को लिखित नोटिस प्रेषित करके समर्पण की इच्छा प्रकट की गई हो वहां ऐसे नोटिस का विरोध करने या नोटिस को अमान्य घोषित कराने के लिए भू-स्वामी द्वारा वाद फाइल किया जा सकता है – अतः वाद सिविल न्यायालय में पोषणीय है ।

अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रथम अपीलीय न्यायालय, अपर जिला न्यायाधीश, संख्या-1, जोधपुर द्वारा दीवानी अपील डिक्री संख्या 33/2003 “नाथूदान बनाम तहसीलदार, ओसियां व अन्य” में पारित निर्णय व डिक्री दिनांक 25.11.2003 को इस द्वितीय अपील के द्वारा चुनौती दी गई है, जिसके जरिए विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत प्रथम अपील खारिज करते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय, सिविल न्यायाधीश, (कख), ओसियां द्वारा दीवानी मूल वाद संख्या 06/2002 “नाथूदान बनाम तहसीलदार, ओसियां व अन्य” में पारित निर्णय व डिक्री दिनांकित 27.9.2003 की पुष्टि की है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां तक दोनों न्यायालयों द्वारा प्रकरण को क्षेत्राधिकार विहीन मानकर वाद खारिज किया गया है, इस बाबत यदि प्रकरण का अवलोकन किया जाए तो प्रकट होता है कि विचारण न्यायालय ने वाद में मात्र निषेधाज्ञा की प्रार्थना होने की मंशा को ध्यान में रखते हुए यह माना कि समर्पण पत्र दिनांक 30.9.2001 को निष्पादित हुआ है, उसके सात माह बाद वाद पेश हुआ है, ऐसी स्थिति में वाद की मंशा निषेधाज्ञा की है, न कि समर्पण पत्र के निरस्तीकरण के क्रम में है । इस न्यायालय की विनम्र राय में न्यायालय को आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के

प्रार्थना पत्र को तय करते समय किसी पक्षकार की क्या मंशा है, उस पर अपना ध्यान केन्द्रित न कर, मात्र अभिवचनात्मक स्थिति पर ध्यान करना न्यायोचित है। जहां कि समर्पण पत्र दिनांक 30.9.2001 को निष्पादित हुआ है एवं वाद दिनांक 7.5.2002 को पेश हुआ है। ऐसी स्थिति में यदि दावा समर्पण पत्र के निष्पादन की दिनांक से मियाद बाहर होता, तब यह समझा जा सकता था कि वाद को मियाद में लाने के उद्देश्य से निषेधाज्ञा की प्रार्थना के साथ-साथ संबंधित समर्पण पत्र के निरस्तीकरण की प्रार्थना चाही गई है, उस स्थिति में निषेधाज्ञा की प्रार्थना को मुख्य मुद्दा मानकर प्रकरण का निस्तारण किया जा सकता था, लेकिन समर्पण पत्र की दिनांक से वाद जिस दिन प्रस्तुत हुआ है, उससे प्रकट होता है कि वाद पूर्णतः मियाद में है। ऐसी स्थिति में यदि निषेधाज्ञा की प्रार्थना का वाद कारण अपीलार्थी-वादी का प्राप्त नहीं होता, तब भी समर्पण पत्र के निरस्तीकरण के लिए वाद प्रस्तुत किया गया है एवं उसकी प्रार्थना की जा सकती है। अतः विचारण न्यायालय ने मूल वाद के अभिवचन, प्रार्थना एवं उसकी मंशा के आधार पर मात्र स्थाई निषेधाज्ञा का वाद मानकर आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत वाद बाधित होना माना है, वह न्यायोचित प्रतीत नहीं होता है। धारा 56 के तहत धारा 55 में की जाने वाली कार्यवाही की प्रक्रिया का हवाला है, जिसके अनुसार धारा 55 के तहत सम्पत्ति को समर्पण किए जाने के पहले जो व्यक्ति सम्पत्ति को समर्पित करता है तो वह अपने समर्पण के इरादे के तथ्य को अंकित करते हुए एक रजिस्टर्ड नोटिस भूमिधारी को एक मई से कम से कम तीस दिन पहले देगा और जब तक समर्पण की तारीख से आगामी कृषि वर्ष तक लगान देने हेतु संबंधित भूमिधारी बाध्य होगा। धारा 57 के तहत यदि धारा 55 व 56 में किसी भी प्रकार का कोई तथ्य अन्तर्वलित होने के पश्चात् भी यदि किसी भूमि क्षेत्र के लगान की वृद्धि की जाती है या इस संबंध में डिक्री पारित कर आदेश पारित किया जाता है तथा संबंधित आसामी/कब्जाधारी उक्त बढ़ी हुई राशि पर कब्जा रखने में सहमत नहीं है, उस स्थिति में उसके क्रम में वह भूमि का समर्पण करना चाहता है तो वह रजिस्टर्ड नोटिस अपने भूमिधारी को भेजने के पश्चात् भूमि क्षेत्र का समर्पण कर सकता है तथा उक्त समर्पण के पश्चात् वह देय राशि के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। धारा 58, जो कि इस प्रकरण में महत्वपूर्ण मुद्दा है, के अनुसार धारा 56 व 57 के अंतर्गत यदि कोई नोटिस यानि कि किसी भी काश्तकार के द्वारा सम्पत्ति का लगान नहीं दे अथवा बढ़े हुए लगान का भुगतान नहीं करने के उद्देश्य के क्रम में किसी प्रकार की सूचना भू-स्वामी

अथवा मालिक को दी गई हो, ऐसी स्थिति में उक्त मालिक, जिसे कि सम्पत्ति का समर्पण किया जाना है, वह उक्त नोटिस को अमान्य घोषित कराने के लिए दावा कर सकता है। उपरोक्त कानूनी प्रावधानों से यह जाहिर होता है कि मात्र समर्पण के पूर्व यदि किसी प्रकार का लिखित नोटिस प्रेषित कर किसी काश्तकार द्वारा भू-स्वामी को भूमि सरेण्डर करने के बाबत कोई इच्छा प्रकट की गई हो एवं इस क्रम में उसके द्वारा नोटिस प्रेषित किया गया हो तो उक्त नोटिस का विरोध करने अथवा उक्त नोटिस को अमान्य घोषित कराने के लिए भू-स्वामी/मालिक द्वारा कार्यवाही/वाद प्रस्तुत किया जा सकता है। वर्तमान प्रकरण की तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार वाद भू-स्वामी द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया है, बल्कि खातेदार द्वारा, जिसने कि समर्पण पत्र के द्वारा सम्पत्ति प्रत्यर्था-प्रतिवादी के पक्ष में समर्पित किया जाना बताया है, उक्त सम्पत्ति को पुनः पाने के क्रम में समर्पण पत्र के निरस्तीकरण के उद्देश्य से वाद प्रस्तुत किया गया है। ऐसी स्थिति में इस न्यायालय की विनम्र राय में धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के प्रावधान वर्तमान प्रकरण में लागू नहीं किए जा सकते हैं, बल्कि धारा 9 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत सिविल न्यायालय को संबंधित दस्तावेज के निरस्तीकरण करने के क्रम में सुनवाई का क्षेत्राधिकार प्राप्त है तथा उस अधिकार के तहत वाद की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वाद सिविल न्यायालय में पूर्णतः पोषणीय है। उपरोक्तनुसार सारवान् कानूनी प्रश्न संख्या-1 के क्रम में दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने वाद की विषयवस्तु कृषि भूमि से संबंधित उपचार मानने के तथ्य की रोशनी में प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता को स्वीकार कर मूल वाद को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने के आदेश दिनांक 27.9.2003 एवं उसकी पुष्टि धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की रोशनी में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा किए जाने के निर्णय दिनांक 25.11.2003 अपास्त किए जाने योग्य हैं। (पैरा 16, 20, 21 और 22)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : एकल पीठ सिविल द्वितीय अपील सं. 98/2004.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील।

अपीलार्थी की ओर से

सर्वश्री आर. के. थानवी और नरेन्द्र थानवी

प्रत्यर्थी की ओर से

सर्वश्री संदीप भांडावत और शंकर सिंह

न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी – अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रथम अपीलीय न्यायालय, अपर जिला न्यायाधीश, संख्या-1, जोधपुर द्वारा दीवानी अपील डिक्री संख्या 33/2003 “नाथूदान बनाम तहसीलदार, ओसियां व अन्य” में पारित निर्णय व डिक्री दिनांक 25.11.2003 को इस द्वितीय अपील के द्वारा चुनौती दी गई है, जिसके जरिए विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत प्रथम अपील खारिज करते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय, सिविल न्यायाधीश, (कख), ओसियां द्वारा दीवानी मूल वाद संख्या 6/2002 “नाथूदान बनाम तहसीलदार, ओसियां व अन्य” में पारित निर्णय व डिक्री दिनांकित 27.9.2003 की पुष्टि की है ।

2. प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय व डिक्री के विरुद्ध द्वितीय अपील प्रस्तुत होने पर इस न्यायालय द्वारा दिनांक 4.5.2004 को अपील को ग्रहण करते हुए निम्न सारवान् कानूनी बिन्दु बनाए गए हैं :-

(i) क्या दोनों निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित करने में अवैधता कारित की है कि वादी का वाद विधि द्वारा वर्जित है और सिविल न्यायालय में चलने योग्य नहीं है ?

(ii) क्या निचले न्यायालयों ने वाद खारिज करने में विधि की गलती की है क्योंकि वाद उचित न्यायालय में पेश करने के लिए वापस किया गया है ?

3. उपरोक्त सारवान् कानूनी बिन्दु के अतिरिक्त दौरान बहस अपील अन्य कोई बिन्दु जिसके क्रम में मीमों आफ अपील में तथ्य अंकित है, के बाबत तर्क प्रस्तुत नहीं किया गया एवं न ही अन्य कोई बिन्दु दोनों पक्षों की ओर से उठाया गया । ऐसी स्थिति में उपरोक्त वर्णित कानूनी बिन्दुओं की परिधि व रोशनी में निम्न प्रकार अपील का निस्तारण किया जाता है ।

4. उपरोक्त कानूनी बिन्दुओं के क्रम में योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी का तर्क रहा कि विचारण न्यायालय एवं प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा धारा 207 सपठित धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम का सही रूप से अवलोकन कर आदेश पारित नहीं किया गया है । उनका कथन रहा कि वाद की प्रकृति व वाद में चाही गई प्रार्थना/अनुतोष किसी भी प्रकार से धारा 207 सपठित धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम एवं आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता की परिधि में नहीं आता है । उनका यह भी कथन रहा कि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने स्थाई निषेधाज्ञा के अनुतोष

को ध्यान में रखते हुए धारा 207 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के तहत वाद बाधित होने के परिणामस्वरूप आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों की रेशनी में खारिज किया है, जबकि वाद में मूल रूप से समर्पण पत्र को निरस्त किए जाने की प्रार्थना के साथ-साथ निषेधाज्ञा की प्रार्थना द्वारा पारित आदेश/निर्णय विधिसम्मत नहीं होने से अपास्त किया जाए ।

5. इसके विपरीत प्रत्यर्थी-प्रतिवादी राज्य की ओर से योग्य राजकीय अधिवक्ता का कथन रहा कि दोनों न्यायालयों द्वारा अपीलार्थी-वादी की ओर से मूल रूप से जो वाद कारण प्रकट किया गया है, उसके क्रम में चाही गई निषेधाज्ञा का अनुतोष धारा 207 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के तहत बाधित होने के परिणामस्वरूप आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुरूप वाद खारिज किया गया है, वह पूर्णतः न्यायोचित है । उनका यह भी कथन रहा कि वादग्रस्त भूमि खातेधारी की भूमि है एवं खातेधारी भूमि से संबंधित समस्त अधिकार राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के तहत ही तय किए जा सकते हैं तथा इस क्रम में अपीलार्थी-वादी की ओर से विचारण न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया गया है, वह स्पष्ट रूप से आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता की परिधि में बाधित है । उनका यह भी तर्क रहा कि अपीलार्थी-वादी यदि संपत्ति के समर्पण के क्रम में किसी प्रकार का अनुतोष चाहता है तो वह धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के तहत संबंधित राजस्व न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है तथा धारा 207 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप धारा 55 लगायत 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के जो प्रावधान हैं, उसके तहत सिविल न्यायालय को इस प्रकरण की सुनवाई का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है । अतः अपील खारिज की जाए ।

6. उपरोक्त तर्कों पर विचार किया गया । पत्रावली एवं दोनों अधीनस्थ न्यायालयों के आदेश व निर्णय का अवलोकन किया गया ।

7. विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी-वादी का वाद आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता की प्रार्थना पत्र, जो कि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत हुआ, जिस पर विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.9.2003 के तहत दिनांक 3.5.2002 को वादग्रस्त भूमि के क्रम में सड़क बनाए जाने की कार्यवाही प्रारम्भ होने के परिणामस्वरूप समर्पण पत्र निष्पादित होने की दिनांक 30.9.2001 के सात माह पश्चात् वाद प्रस्तुत

होने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए एवं वाद मात्र स्थाई निषेधाज्ञा का मानते हुए धारा 207 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की परिधि में आने के परिणामस्वरूप आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत वाद खारिज किया गया है एवं इसी प्रकार प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश को यथावत रखते हुए धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1995 के प्रावधानों की रोशनी में यह मानते हुए कि समर्पण से संबंधित अनुतोष प्राप्त करने का अधिकार अपीलार्थी-वादी को संबंधित राजस्व न्यायालय में है, वाद को क्षेत्राधिकारविहीन मानते हुए खारिज किया है ।

8. दोनों अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय के अवलोकन से प्रकट होता है कि जहां विचारण न्यायालय ने वाद को मात्र स्थाई निषेधाज्ञा का होने के परिणामस्वरूप एवं प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा स्थाई निषेधाज्ञा के अतिरिक्त समर्पण की प्रार्थना धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम में होने के परिणामस्वरूप निर्णय पारित कर वाद की पोषणीयता सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार में होना नहीं माना है ।

9. इस क्रम में जहां तक तथ्यात्मक स्थिति का प्रश्न है । अपीलार्थी-वादी की ओर से मूल रूप से अपने वादपत्र में यह अंकित किया गया है कि वादग्रस्त सम्पत्ति के क्रम में समर्पण पत्र दिनांक 30.9.2001 को उसकी इच्छा के विपरीत, विभिन्न कारणों से, जो कि वादपत्र में अंकित हैं, निष्पादित करा दिया, जिससे वह पाबंद नहीं हैं एवं इसी क्रम में समर्पण पत्र के निरस्तीकरण के क्रम में दिनांक 7.5.2002 को विचारण न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया गया ।

10. उपरोक्त वाद के क्रम में वाद कारण पैरा संख्या-5 में निम्न प्रकार वर्णित किया :-

यह कि बिनायदावा तारीख 30.9.2001 को जब कि प्रतिवादीगण ने वादी से झूठा आश्वासन देकर दबाव से गलत समर्पण पत्र पर हस्ताक्षर करवाए व तारीख 3.5.2002 को जब कि नक्शे के विपरीत जगह पर सड़क बनाने का काम शुरू किया, तब बमुकाम मथानिया में पैदा हुआ ।

एवं वाद में चाही गई प्रार्थना निम्न प्रकार है -

(1) वादी से प्रतिवादी के हक में लिखवाया गया समर्पण पत्र अवैध घोषित कर रद्द किए जाने की डिक्री बहक वादी खिलाफ

प्रतिवादीगण के सादिर फरवामई जाए ।

(2) कि स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री बहक वादी खिलाफ प्रतिवादीगण इस प्रकार से सादिर फरमाई जाए कि समर्पण पत्र के साथ बनाए गए नक्शे में जो भूमि लाल रंग से एक्स से वाई बताई गई है, उसके अलावा वादी को अन्य किसी भी भूमि पर सड़क निर्माण नहीं करे एवं न अन्य किसी से कराएं ।

11. अपीलार्थी-वादी की ओर से उपरोक्त वादपत्र प्रस्तुत होने के पश्चात् प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर प्रार्थना पत्र की चरण संख्या-2 में सम्पत्ति के समर्पण करने के पश्चात् खातेदारी अधिकार समाप्त हो जाने से अपीलार्थी-वादी को वाद प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं होने एवं वादग्रस्त भूमि खातेदारी भूमि होने के परिणामस्वरूप सिविल न्यायालय को क्षेत्राधिकार नहीं होने के आधार पर वाद खारिज किए जाने की प्रार्थना की है ।

12. जहां तक आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रश्न है, आदेश 7, नियम 11(घ) सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान निम्न प्रकार हैं :-

(घ) जहां वादपत्र में के कथन से यह प्रतीत होता है कि वादी किसी विधि द्वारा वर्जित है ।

13. उपरोक्त प्रावधान के अवलोकन से प्रकट होता है कि जहां किसी कानून के तहत प्रथमदृष्ट्या अभिवचनों के आधार पर वाद सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार से वर्जित है, उस स्थिति में सिविल न्यायालय को मामले की सुनवाई का क्षेत्राधिकार नहीं होने पर न्यायालय ऐसे वाद को खारिज कर सकता है ।

14. इस न्यायालय द्वारा जो सारवान् कानूनी प्रश्न बनाए गए हैं, उसके क्रम में द्वितीय सारवान् कानूनी प्रश्न पर जाने से पूर्व प्रथम सारवान् कानूनी प्रश्न, जिसके तहत वाद खारिज किया गया है, को चुनौती दी गई है, उस पर सर्वप्रथम निष्कर्ष दिया जाना न्यायोचित है ।

15. इस क्रम में पत्रावली के अवलोकन से प्रकट होता है कि अपीलार्थी-वादी ने अपने वादपत्र की चरण संख्या 6 में जो वाद कारण वर्णित किए हैं एवं तदनुसार जो प्रार्थना/अनुतोष चाहा गया है, उससे स्पष्ट

है कि अपीलार्थी-वादी ने समर्पण पत्र के निरस्तीकरण की बाबत मूल प्रार्थना/अनुतोष चाहा है एवं उसके साथ निषेधाज्ञा की भी बाबत भी अनुतोष चाहा है। जबकि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रार्थना पत्र में सम्पत्ति के समर्पण होने के पश्चात् भूमि का स्वरूप ही बदल जाना एवं खातेदारी समाप्त हो जाना अंकित किया है। यदि एक क्षण के लिए प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से अपने प्रार्थनापत्र के चरण संख्या-2 में वर्णित तथ्यों को यथावत माना जाए तो उस स्थिति में यह प्रकट होता है कि सम्पत्ति के जहां खातेदारी अधिकार समाप्त हो चुके हों, वहां पर राजस्व न्यायालय को सुनवाई का अधिकार शेष नहीं रहता है, बल्कि धारा 9 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत सिविल न्यायालय को प्रकरण की सुनवाई का क्षेत्राधिकार है।

16. जहां तक दोनों न्यायालयों द्वारा प्रकरण को क्षेत्राधिकार विहीन मानकर वाद खारिज किया गया है, इस बाबत यदि प्रकरण का अवलोकन किया जाए तो प्रकट होता है कि विचारण न्यायालय ने वाद में मात्र निषेधाज्ञा की प्रार्थना होने की मंशा को ध्यान में रखते हुए यह माना कि समर्पण पत्र दिनांक 30.9.2001 को निष्पादित हुआ है, उसके सात माह बाद वाद पेश हुआ है, ऐसी स्थिति में वाद की मंशा निषेधाज्ञा की है, न कि समर्पण पत्र के निरस्तीकरण के क्रम में है। इस न्यायालय की विनम्र राय में न्यायालय को आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रार्थना-पत्र को तय करते समय किसी पक्षकार की क्या मंशा है, उस पर अपना ध्यान केन्द्रित न कर, मात्र अभिवचनात्मक स्थिति पर ध्यान करना न्यायोचित है। जहां कि समर्पण पत्र दिनांक 30.9.2001 को निष्पादित हुआ है एवं वाद दिनांक 7.5.2002 को पेश हुआ है। ऐसी स्थिति में यदि दावा समर्पण पत्र के निष्पादन की दिनांक से मियाद बाहर होता, तब यह समझा जा सकता था कि वाद को मियाद में लाने के उद्देश्य से निषेधाज्ञा की प्रार्थना के साथ-साथ संबंधित समर्पण पत्र के निरस्तीकरण की प्रार्थना चाही गई है, उस स्थिति में निषेधाज्ञा की प्रार्थना को मुख्य मुद्दा मानकर प्रकरण का निस्तारण किया जा सकता था, लेकिन समर्पण पत्र की दिनांक से वाद जिस दिन प्रस्तुत हुआ है, उससे प्रकट होता है कि वाद पूर्णतः मियाद में है। ऐसी स्थिति में यदि निषेधाज्ञा की प्रार्थना का वाद कारण अपीलार्थी-वादी का प्राप्त नहीं होता, तब भी समर्पण पत्र के निरस्तीकरण के लिए वाद प्रस्तुत किया गया है एवं उसकी प्रार्थना की जा सकती है। अतः विचारण न्यायालय ने मूल वाद के अभिवचन, प्रार्थना एवं उसकी मंशा के आधार पर मात्र स्थायी निषेधाज्ञा का वाद मानकर आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत वाद बाधित होना माना है,

वह न्यायोचित प्रतीत नहीं होता है ।

17. जहां तक प्रथम अपीलिय न्यायालय के निर्णय का प्रश्न है । प्रथम अपीलिय न्यायालय द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा के साथ-साथ अपीलार्थी-वादी के द्वारा समर्पण पत्र के निरस्तीकरण की प्रार्थना को धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की परिधि में होने के परिणामस्वरूप धारा 207 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की तीसरी अनुसूची में जो विवरण दिया गया है एवं उस विवरण की रोशनी में प्रकरण को राजस्व न्यायालय के द्वारा सुनने योग्य माना है । इस क्रम में दोनों पक्षों के योग्य अधिवक्तागण की ओर से इस न्यायालय के समक्ष जो तर्क प्रस्तुत किए गए हैं उनकी रोशनी में इस बिन्दु का निस्तारण निम्न प्रकार किया जाता है ।

18. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी ने प्रकट किया कि वाद में चाही गई प्रार्थना समर्पण पत्र के निष्पादन होने के पश्चात्, उक्त समर्पण पत्र को अपीलार्थी-वादी की इच्छा के विपरीत विभिन्न आधारों पर निष्पादित किया जाना बताया है । ऐसी स्थिति में समर्पण पत्र के निरस्तीकरण का वाद 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की परिधि में नहीं है । दूसरी ओर योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने प्रकट किया कि स्थायी निषेधाज्ञा की प्रार्थना के साथ अपीलार्थी-वादी की ओर से समर्पण से संबंधित कार्यवाही व समर्पण पत्र के निरस्तीकरण के क्रम में जो प्रार्थना चाही है, वह पूर्णतः धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की परिधि में आती है ।

19. जहां तक कानूनी प्रावधान का प्रश्न है । धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के पूर्व धारा 55, 56 व 57 का अवलोकन करना आवश्यक व न्यायोचित है :-

“धारा 55. **समर्पण** – कोई आसामी जो किसी पट्टे या इकरारनामे द्वारा आगामी वर्ष में अपने भूमि-क्षेत्र पर आधिपत्य बनाए रखने के लिए आबद्ध आसामी नहीं है, एक मई को या तत्पूर्व, अपने भूमि-क्षेत्र को चाहे वह शिकमी-काश्त पर दिया हुआ अथवा बंधक ग्रस्त हो या नहीं, कब्जा छोड़ते हुए (एक लेख-पत्र, जो अधिकारिता रखने वाले तहसीलदार द्वारा अथवा म्यूनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन द्वारा प्रमाणीकृत हो, के जरिए समर्पित कर सकता है) ।

धारा 56. **भूमिधारी को नोटिस** – (1) धारा 55 के अन्तर्गत कोई भी समर्पण किए जाने के पहले, वह आसामी जो उक्त रूपेण समर्पण कर अपने इरादे का कि वह समर्पण करना चाहता है, एक

रजिस्टर्ड नोटिस अपने भूमिधारियों को एक मई से कम से कम तीन दिन पहले देगा और जब तक कि नोटिस भेज नहीं दिया जाए वह आसामी समर्पण की तारीख से आगामी कृषि-वर्ष का लगान अपने भूमि-क्षेत्र के विषय में, अपने भूमिधारी को देने का भागी होगा ।

धारा 57. **लगान-वृद्धि की दशा में समर्पण** – धारा 55 तथा धारा 56 में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए, जब कि भूमि-क्षेत्र के लगान-वृद्धि की डिक्री या आदेश पारित कर दिया जाए तो उसका आसामी, डिक्री या आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर अपनी इच्छा का कि वह लगान वृद्धि की तारीख से भूमि-क्षेत्र का समर्पण करना चाहता है, एक रजिस्टर्ड नोटिस अपने भूमिधारी को भेजने के पश्चात् तदनुसार अपने भूमि-क्षेत्र का समर्पण कर सकता है और ऐसे प्रत्येक मामले में आसामी समर्पण के पश्चात्पूर्ति समय के लिए अपने भूमि-क्षेत्र के संबंध में देय लगान का भागी नहीं होगा ।

धारा 58. **समर्पण को रद्द करने हेतु दावा** – (1) कोई भूमिधारी जिसे धारा 56 या धारा 57 के अन्तर्गत नोटिस भेजा गया हो, उक्त नोटिस को अमान्य घोषित किए जाने के लिए निमित्त दावा दायर कर सकता है ।

(2) यदि ऐसा कोई दावा दायर किया जाए तो समर्पण के लिए भूमिधारी की स्वीकृति हुई समझ ली जाएगी ।’

20. उपरोक्त कानूनी प्रावधानों के अवलोकन से प्रकट होता है कि धारा 55 मात्र किसी भी स्थिति में भूमि के कब्जेधारी, यदि अपना कब्जा छोड़ना चाहता है तो वह इस संबंध में एक दस्तावेज अधिकारिता रखने वाले तहसीलदार व म्यूनिसिपल बोर्ड के चैयरमैन को लिखकर समर्पित कर सकता है ।

धारा 56 के तहत धारा 55 में की जाने वाली कार्यवाही की प्रक्रिया का हवाला है, जिसके अनुसार धारा 55 के तहत सम्पत्ति को समर्पण किए जाने के पहले जो व्यक्ति सम्पत्ति को समर्पित करता है तो वह अपने समर्पण के इरादे के तथ्य को अंकित करते हुए एक रजिस्टर्ड नोटिस भूमिधारी को एक मई से कम से कम तीन दिन पहले देगा और जब तक

समर्पण की तारीख से आगामी कृषि वर्ष तक लगान देने हेतु संबंधित भूमिधारी बाध्य होगा ।

धारा 57 के तहत यदि धारा 55 व 56 में किसी भी प्रकार का कोई तथ्य अन्तर्वलित होने के पश्चात् भी यदि किसी भूमि क्षेत्र के लगान की वृद्धि की जाती है या इस संबंध में डिक्री पारित कर आदेश पारित किया जाता है तथा संबंधित आसामी/कब्जाधारी उक्त बढी हुई राशि पर कब्जा रखने में सहमत नहीं है, उस स्थिति में उसके क्रम में वह भूमि का समर्पण करना चाहता है तो वह रजिस्टर्ड नोटिस अपने भूमिधारी को भेजने के पश्चात् भूमि क्षेत्र का समर्पण कर सकता है तथा उक्त समर्पण के पश्चात् वह देय राशि के लिए उत्तरदायी नहीं होगा ।

धारा 58, जो कि इस प्रकरण में महत्वपूर्ण मुद्दा है, के अनुसार धारा 56 व 57 के अंतर्गत यदि कोई नोटिस यानि कि किसी भी काश्तकार के द्वारा सम्पत्ति का लगान नहीं दे अथवा बढ़े हुए लगान का भुगतान नहीं करने के उद्देश्य के क्रम में किसी प्रकार की सूचना भू-स्वामी अथवा मालिक को दी गई हो, ऐसी स्थिति में उक्त मालिक, जिसे कि सम्पत्ति का समर्पण किया जाना है, वह उक्त नोटिस को अमान्य घोषित कराने के लिए दावा कर सकता है ।

21. उपरोक्त कानूनी प्रावधानों से यह जाहिर होता है कि मात्र समर्पण के पूर्व यदि किसी प्रकार का लिखित नोटिस प्रेषित कर किसी काश्तकार द्वारा भू-स्वामी को भूमि सरेण्डर करने के बाबत कोई इच्छा प्रकट की गई हो एवं इस क्रम में उसके द्वारा नोटिस प्रेषित किया गया हो तो उक्त नोटिस का विरोध करने अथवा उक्त नोटिस को अमान्य घोषित कराने के लिए भू-स्वामी/मालिक द्वारा कार्यवाही/वाद प्रस्तुत किया जा सकता है । वर्तमान प्रकरण की तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार वाद भू-स्वामी द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया है, बल्कि खातेदार द्वारा, जिसने कि समर्पण पत्र के द्वारा सम्पत्ति प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के पक्ष में समर्पित किया जाना बताया है, उक्त सम्पत्ति को पुनः पाने के क्रम में समर्पण पत्र के निरस्तीकरण के उद्देश्य से वाद प्रस्तुत किया गया है । ऐसी स्थिति में इस न्यायालय की विनम्र राय में धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के प्रावधान वर्तमान प्रकरण में लागू नहीं किए जा सकते हैं, बल्कि धारा 9 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत सिविल न्यायालय को संबंधित दस्तावेज के निरस्तीकरण करने के क्रम में सुनवाई का क्षेत्राधिकार प्राप्त है तथा उस अधिकार के तहत वाद की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वाद सिविल न्यायालय में पूर्णतः पोषणीय है ।

22. उपरोक्तानुसार सारवान् कानूनी प्रश्न संख्या-1 के क्रम में दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने वाद की विषयवस्तु कृषि भूमि से संबंधित उपचार मानने के तथ्य की रेशनी में प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता को स्वीकार कर मूल वाद को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने के आदेश दिनांक 27.9.2003 एवं उसकी पुष्टि धारा 58 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की रेशनी में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा किए जाने के निर्णय दिनांक 25.11.2003 अपास्त किए जाने योग्य हैं ।

23. चूंकि प्रथम सारवान् कानूनी प्रश्न, जिसके क्रम में वर्तमान अपील स्वीकार होना पाया जाता है, ऐसी स्थिति में द्वितीय सारवान् कानूनी प्रश्न पर अलग से आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं रहती है ।

24. उपरोक्तानुसार विवेचन के फलस्वरूप अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत यह द्वितीय अपील स्वीकार की जाती है । विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.9.2003 एवं उक्त आदेश की पुष्टि करते हुए प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 25.11.2003 दोनों को अपास्त किया जाता है । विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि मूल वाद को पुनः उसी नंबर पर दर्ज कर एवं विधि अनुसार दोनों पक्षों को सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान करते हुए, इस निर्णय में दिए गए किसी भी निष्कर्ष से प्रभावित हुए बिना, प्रकरण का निस्तारण करे ।

25. चूंकि विचारण न्यायालय में मूल वाद वर्ष 2002 में प्रस्तुत हुआ है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि प्रकरण का यथासंभव छः माह में निस्तारण करने का प्रयास करे ।

26. दोनों पक्षों की सहमति से विचारण न्यायालय में उपस्थिति हेतु दिनांक 4.2.2014 की तिथि नियत की जाती है । कार्यालय को उक्त तिथि से पूर्व दोनों न्यायालयों का अभिलेख निर्णय की प्रति के साथ अविलंब लौटाने का निर्देश दिया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./मह.

जाती है कि प्रकरण का यथासंभव छह माह में निस्तारण करने का प्रयास करे।

26. दोनों पक्षों की सहमति से विचारण न्यायालय में उपस्थिति हेतु दिनांक 4.2.2014 की तिथि नियत की जाती है। कार्यालय को उक्त तिथि से पूर्व दोनों न्यायालयों का अभिलेख निर्णय की प्रति के साथ अविलंब लौटाने का निर्देश दिया जाता है।

अपील मंजूर की गई।

मही./मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 541

हिमाचल प्रदेश

न्यू इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी लि.

बनाम

राज कुमार और अन्य

तारीख 2 जनवरी, 2013

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 166 [सपटित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226] – रिट – दुर्घटना – क्षतियां कारित होना – उस प्राइवेट चिकित्सक से निःशक्तता प्रमाणपत्र प्राप्त करना जिसने उसका कभी उपचार नहीं किया – प्रतिकर – यदि दुर्घटना में क्षतिग्रस्त व्यक्ति को उस प्राइवेट चिकित्सक से प्राप्त निःशक्तता प्रमाणपत्र के आधार पर प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाता है जिसने उसका कभी उपचार नहीं किया तो ऐसा प्रतिकर अयुक्तियुक्त और अवैध होगा और इस निमित्त पारित निर्णय और डिक्री कायम रखे जाने योग्य नहीं होगी।

वर्तमान मामले में, याची अपराध करने वाले यान, रजिस्ट्रीकरण सं. एच पी-64-0400 का बीमाकर्ता होने के नाते विद्वान् निचले मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर के निर्धारण से व्यथित प्रतीत होता है जिसे विद्वान् अधिकरण ने डा. द्वारिका प्रसाद, मनोविज्ञानी, कोठी सं. 149, सेक्टर 48-सी, चंडीगढ़ एक प्राइवेट चिकित्सक द्वारा जारी निःशक्तता

प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए के आधार पर दिया था, जिसके अधीन याची का कभी भी उपचार नहीं हुआ था और स्वयं उसके पक्षकथन के अनुसार, दुर्घटना के पश्चात् उसका उपचार क्षेत्रीय अस्पताल, सोलन में हुआ और उसके बाद पी. जी. आई., चंडीगढ़ में हुआ था। दोनों पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत अभिलेखों और निवेदनों का परिशीलन करते हुए यह विवादित नहीं रह जाता है कि दुर्घटना, तारीख 23 सितम्बर, 2005 को ग्राम ढाली, तहसील राजगढ़, जिला सिरमौर के निकट ट्रक रजिस्ट्रीकरण सं. एच पी-64-0400, से कारित हुई थी। इस तथ्य के बारे में भी कोई संविवाद नहीं है कि दावेदार-प्रथम प्रत्यर्थी अपराध करने वाले यान/ट्रक में क्लीनर के रूप में कार्य कर रहा था और उसे 1,800/- रुपए प्रतिमाह की दर पर मजदूरी संदत्त की जाती थी। उसे दुर्घटना में क्षतियां, जिसमें सिर की क्षति सम्मिलित है, कारित हुई थी और उसे उपचार के लिए क्षेत्रीय अस्पताल ले जाया गया था। ओ. पी. डी. पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए है। उसे तारीख 24 सितम्बर, 2005 को पी. जी. आई., चंडीगढ़ को स्थानांतरित किया गया। पी. जी. आई., चंडीगढ़ में दावेदार-प्रथम प्रत्यर्थी को दिए गए उपचार से संबंधित अभिलेख ओ. पी. डी. टिकट प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-5/ए से प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-5/एच हैं। उसे तारीख 30 सितम्बर, 2005 को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई थी। पी. जी. आई., चंडीगढ़ या क्षेत्रीय अस्पताल, सोलन से निःशक्तता प्रमाणपत्र साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया गया जिसका बेहतर कारण दावेदार-प्रथम प्रत्यर्थी ही जानता है। तथापि, अभि. सा. 3 डा. द्वारिका प्रसाद, प्राइवेट चिकित्सक द्वारा जारी निःशक्तता प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-3/ए साक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। विद्वान् निचले मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने प्रस्तुत निःशक्तता प्रमाणपत्र के आधार पर प्रतिकर निर्धारित करते हुए अधिनिर्णय दिया। जिसके विरुद्ध वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई। न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सुस्थिर विधिक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, ऐसे प्रमाणपत्र का, दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 को कारित किसी भी शारीरिक या मानसिक निःशक्तता को निर्धारित करने के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता है, उन क्षतियों के लिए जो उसे दुर्घटना में कारित हुई हैं जिसके आधार पर निर्धारित करके उसे प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया है। यदि

इस दस्तावेज को साक्ष्य से अपवर्जित कर दिया जाता है तो मुश्किल से ही अभिलेख पर कोई विधिक या स्वीकार्य साक्ष्य बचेगा जिससे यह दर्शित होता है कि याची को क्षतियों के कारण स्थायी निःशक्तता कारित हुई है जो उसे दुर्घटना में हुई थी। तथापि, न्यायालय क्षतिग्रस्त-दावेदार को चिकित्सा बोर्ड के समक्ष निर्दिष्ट कर सकता है। इस न्यायालय द्वारा स्वयमेव ही उसे ऐसे चिकित्सा बोर्ड के समक्ष निर्दिष्ट किया जा सकता है, तथापि, उस दशा में कोई भी पक्षकार इस न्यायालय के समक्ष अपील का अवसर खो सकता है, इसलिए, यह समुचित समझा जाता है कि अधिनिर्णय जो निःशक्तता प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू.- 3/ए पर आधारित है, को अपास्त किया जाना चाहिए और इस याचिका को दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 को स्थायी निःशक्तता के बारे में, यदि कोई हो, जो उसे दुर्घटना में कारित क्षतियों के कारण हुई है, का निर्धारण करने के लिए चिकित्सा बोर्ड के समक्ष निर्दिष्ट करने के पश्चात् और पक्षकारों को सुनवाई करने का सम्यक् अवसर देने के पश्चात् नए सिरे से प्रतिकर निर्धारित करने के लिए विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण-II, सोलन के पास वापस भेजा जाता है। (पैरा 9)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2011]	(2011) 1 एस. सी. सी. 343 : राज कुमार बनाम अजय कुमार और एक अन्य ;	5
[2009]	2009 ए. सी. जे. 1070 : राम किरण गोयल बनाम उप-खंड इंजीनियर, यांत्रिक और अन्य ।	7

आरम्भिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2009-I की सिविल रिट याचिका सं. 5084.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री बी. एम. चौहान, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से	श्री रविन्दर ठाकुर, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से	श्री विशाल पनवर, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी – वर्तमान रिट याचिका में, विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण-II, सोलन द्वारा 2005 की दावा याचिका सं. 14-एस/2 में पारित तारीख 30 जून, 2009 के अधिनिर्णय को अनुचित होने के एकमात्र आधार पर चुनौती दी गई है ।

2. स्वीकृततः, याची अपराध करने वाले यान, रजिस्ट्रीकरण सं. एच पी-64-0400 का बीमाकर्ता होने के नाते विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर के निर्धारण से व्यथित प्रतीत होता है जिसे विद्वान् अधिकरण ने डा. द्वारिका प्रसाद, मनोविज्ञानी, कोठी सं. 149, सेक्टर 48-सी, चंडीगढ़ एक प्राइवेट चिकित्सक द्वारा जारी निःशक्तता प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए के आधार पर दिया था, जिसके अधीन याची का कभी भी उपचार नहीं हुआ था और स्वयं उसके पक्षकथन के अनुसार, दुर्घटना के पश्चात् उसका उपचार क्षेत्रीय अस्पताल, सोलन में हुआ और उसके बाद पी. जी. आई., चंडीगढ़ में हुआ था ।

3. दोनों पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत अभिलेखों और निवेदनों का परिशीलन करते हुए यह विवादित नहीं रह जाता है कि दुर्घटना, तारीख 23 सितम्बर, 2005 को ग्राम ढाली, तहसील राजगढ़, जिला सिरमौर के निकट ट्रक रजिस्ट्रीकरण सं. एच पी-64-0400, से कारित हुई थी । इस तथ्य के बारे में भी कोई संविवाद नहीं है कि दावेदार-प्रथम प्रत्यर्थी अपराध करने वाले यान/ट्रक में क्लीनर के रूप में कार्य कर रहा था और उसे 1800/- रुपए प्रतिमाह की दर पर मजदूरी संदत्त की जाती थी । उसे दुर्घटना में क्षतियां, जिसमें सिर की क्षति सम्मिलित है, कारित हुई थी और उसे उपचार के लिए क्षेत्रीय अस्पताल ले जाया गया था । ओ. पी. डी. पर्ची प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए है । उसे तारीख 24 सितम्बर, 2005 को पी. जी. आई. चंडीगढ़ को स्थानांतरित किया गया । पी. जी. आई. चंडीगढ़ में दावेदार-प्रथम प्रत्यर्थी को दिए गए उपचार से संबंधित अभिलेख ओ. पी. डी. टिकट प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-5/ए से प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-5/एच हैं । उसे तारीख 30 सितम्बर, 2005 को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई थी । पी. जी. आई. चंडीगढ़ या क्षेत्रीय अस्पताल, सोलन से निःशक्तता प्रमाणपत्र साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया गया जिसका बेहतर कारण दावेदार-प्रथम प्रत्यर्थी ही जानता है । तथापि, अभि. सा. 3 डा. द्वारिका प्रसाद, प्राइवेट चिकित्सक द्वारा जारी निःशक्तता प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-3/ए साक्ष्य में

प्रस्तुत किया गया है ।

4. याची के विद्वान् काउंसेल ने बलपूर्वक यह दलील दी है कि दावेदार-प्रथम प्रत्यर्थी का क्षेत्रीय अस्पताल, सोलन और पी. जी. आई. चंडीगढ़ में उपचार कराने को ध्यान में रखते हुए मात्र इन अस्पतालों द्वारा जारी निःशक्तता प्रमाणपत्र ही साक्ष्य में ग्राह्य हो सकते हैं और न कि प्राइवेट चिकित्सक द्वारा जारी प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-3/ए, जिसने कभी भी दावेदार-प्रथम प्रत्यर्थी की चिकित्सा नहीं की न ही वह उसके उपचाराधीन रहा ।

5. दूसरी ओर, दावेदार-प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क दिया गया कि बीमाकर्ता-याची की ओर से कराए गए निःशक्तता प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-3/ए की प्रमाणिकता और असलियत के बारे में कोई प्रतिपरीक्षा नहीं होने को ध्यान में रखते हुए विद्वान् निचले मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने याची को अधिनिर्णीत प्रतिकर का निर्धारण करते समय सही ही मूल्यांकन किया है । यह प्रश्न कि क्या प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-3/ए की प्रकृति में निःशक्तता प्रमाणपत्र साक्ष्य में ग्राह्य है या नहीं, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **राज कुमार बनाम अजय कुमार और एक अन्य¹** वाले मामले पर अवधारित किया जा सकता है जिसका सुसंगत भाग निम्नलिखित है :-

“18. अधिकरण को इस सावधानी के साथ भी कार्य करना चाहिए कि यदि उन चिकित्सकों के विशेषज्ञ साक्ष्यों को स्वीकार करने की प्रस्थापना की जाती है जिन्होंने क्षतिग्रस्त का उपचार नहीं किया है अपितु जिन्होंने बिना समुचित चिकित्सीय अवधारण किए ‘उपयोग के लिए तैयार’ निःशक्तता प्रमाणपत्र दिया है । उन बेईमान चिकित्सकों के कई उदाहरण हैं जिन्होंने क्षतिग्रस्त का उपचार किए बिना दावेदारों की सहायता से उदार निःशक्तता प्रमाणपत्र दिया है । किन्तु, जहां निःशक्तता प्रमाणपत्र सम्यक् रूप से गठित चिकित्सा बोर्डों द्वारा दिया गया है वहां वे ऐसे प्रमाणपत्रों की असलियत के बारे में साक्ष्य के अध्यधीन स्वीकार किए जा सकते हैं । अधिकरण इस मुद्दे पर यह अपेक्षा कर सकते हैं कि उस चिकित्सक का साक्ष्य ही

¹ (2011) 1 एस. सी. सी. 343.

स्वीकार किया जा सकता है जिसने क्षतिग्रस्त का उपचार किया हो या स्थायी निःशक्तता का निर्धारण किया हो । मात्र निःशक्तता प्रमाणपत्र या उन्मोचन प्रमाणपत्र का प्रस्तुतीकरण ही इसमें कथित निःशक्तता की सीमा का सबूत नहीं होगा जब तक कि चिकित्सक जिसने दावेदार का उपचार किया है या जिसने उसकी चिकित्सीय परीक्षा की ही है और दावेदार की निःशक्तता की सीमा को निर्धारित किया है, का प्रमाणपत्र के संदर्भ में प्रतिपरीक्षा नहीं कर ली गई है । यदि अधिकरण, दावेदार द्वारा प्रस्तुत चिकित्सीय साक्ष्य से संतुष्ट नहीं होता है तो वह एक चिकित्सा बोर्ड (ख्यातिप्राप्त स्थानीय अस्पतालों/ मेडिकल कालेजों की सलाह द्वारा बनाया गया पैनल) गठित कर सकता है और दावेदार को निःशक्तता का निर्धारण करने के लिए ऐसे चिकित्सा बोर्ड के पास निर्दिष्ट कर सकता है ।”

6. माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय के पैरा 8 से 17 में स्थायी निःशक्तता प्रमाणपत्र के आधार पर अर्जित भावी भत्ते के निर्धारण के सभी पक्ष और विपक्ष पर विचार करने के पश्चात् ऐसा निष्कर्ष निकाला है । इस प्रकार, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह विधि अधिकथित की गई है कि उस चिकित्सक द्वारा, जिसके अधीन क्षतिग्रस्त/दावेदार उपचाराधीन रहा, जारी निःशक्तता प्रमाणपत्र या ख्यातिप्राप्त स्थानीय अस्पतालों/मेडिकल कालेजों की सलाह द्वारा बनाए गए पैनल से सम्यक् रूप से गठित चिकित्सा बोर्ड द्वारा जारी निःशक्तता प्रमाणपत्र ही साक्ष्य में ग्राह्य है, यह भी कि यदि संबंधित चिकित्सक जिसने प्रमाणपत्र जारी किया है उस प्रमाणपत्र को साबित करने के लिए परीक्षा कर ली गई है । इस निर्णय में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि न्यायालय निःशक्तता प्रमाणपत्र की प्रामाणिकता या असलियत के बारे में संतुष्ट नहीं है तो क्षतिग्रस्त दावेदार को स्वयं ऐसे न्यायालय द्वारा गठित चिकित्सा बोर्ड के पास निर्दिष्ट किया जा सकता है ।

7. याची के विद्वान् काउंसिल ने **राम किरण गोयल बनाम उप-खंड इंजीनियर, यांत्रिक और अन्य¹** वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के निर्णय का भी अवलंब लिया । इस निर्णय

¹ 2009 ए. सी. जे. 1070.

का विनिश्चयाधार, जो निम्नलिखित है, यह प्रकट करता है कि प्राइवेट चिकित्सक से प्राप्त निःशक्तता प्रमाणपत्र से विश्वास नहीं झलकता है विशिष्टतया तब जब क्षतिग्रस्त दावेदार का सरकारी अस्पतालों से उपचार किया गया हो :-

“14. जहां तक उपर्युक्त प्राधिकार का संबंध है, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने पहले ही दोनों धन और धन से भिन्न क्षतियों के लिए पृथक्-पृथक् प्रतिकर निर्धारित कर चुका है जैसा कि पृथक् शीर्षकों अर्थात् स्थायी निःशक्तता और पीड़ा और दवाइयों और आय का भावी हानि के अधीन प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया है और हम प्रतिकर बढ़ाने के लिए कोई क्षेत्र नहीं पाते हैं । जहां तक निःशक्तता प्रमाणपत्र प्रदर्श पी-18 का संबंध है, यह प्राइवेट चिकित्सक से प्राप्त होने के कारण कोई विश्वास पैदा नहीं करता है जबकि अन्य उपचार सरकारी अस्पताल से कराया गया है । तथापि, प्रतिकर, जो स्वीकृत स्थायी निःशक्तता के लिए अधिनिर्णीत किया गया है, को बढ़ाए जाने की आवश्यकता है और उसके लिए हमें उपर्युक्त निर्दिष्ट इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का अनुसरण करना चाहिए जहां क्षतिग्रस्त की एक प्रतिशत निःशक्तता के लिए 2,000/- रुपए अधिनिर्णीत किया गया है । उस गणना के आधार पर, स्थायी निःशक्तता के संबंध में प्रतिकर, जो 55 प्रतिशत के रूप में प्रदर्श पी-31 के द्वारा अधिनिर्णीत किया गया है, इस प्रकार, प्रत्येक एक प्रतिशत निःशक्तता के लिए 2,000/- रुपए की दर पर प्रतिकर की रकम 1,10,000/- रुपए निर्धारित होता है ।”

8. इस निर्णय के विनिश्चयाधार पर, वर्तमान रिट याचिका में विवाद्यक मुद्दे को तय किया जाएगा क्योंकि यहां भी क्षतिग्रस्त दावेदार द्वारा अपना उपचार, क्षेत्रीय अस्पताल, सोलन और पी. जी. आई. चण्डीगढ़, सरकारी अस्पतालों द्वारा कराया गया है जबकि साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. -3/ए प्राइवेट चिकित्सक द्वारा जारी किया गया है ।

9. उपर्युक्त चर्चा, सुस्थिर विधिक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, ऐसे प्रमाणपत्र का, दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 को कारित किसी भी शारीरिक या मानसिक निःशक्तता को निर्धारित करने के लिए अवलंब नहीं लिया जा

सकता है, उन क्षतियों के लिए जो उसे दुर्घटना में कारित हुई हैं जिसके आधार पर निर्धारित करके उसे प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया है। यदि इस दस्तावेज को साक्ष्य से अपवर्जित कर दिया जाता है तो मुश्किल से ही अभिलेख पर कोई विधिक या स्वीकार्य साक्ष्य बचेगा जिससे यह दर्शित होता है कि याची को क्षतियों के कारण स्थायी निःशक्तता कारित हुई है जो उसे दुर्घटना में हुई थी। तथापि, न्यायालय क्षतिग्रस्त-दावेदार को चिकित्सा बोर्ड के समक्ष निर्दिष्ट कर सकता है। इस न्यायालय द्वारा स्वयमेव ही उसे ऐसे चिकित्सा बोर्ड के समक्ष निर्दिष्ट किया जा सकता है, तथापि, उस दशा में कोई भी पक्षकार इस न्यायालय के समक्ष अपील का अवसर खो सकता है, इसलिए, यह समुचित समझा जाता है कि अधिनिर्णय जो निःशक्तता प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-3/ए पर आधारित है, को अपास्त किया जाना चाहिए और इस याचिका को दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 को स्थायी निःशक्तता के बारे में, यदि कोई हो, जो उसे दुर्घटना में कारित क्षतियों के कारण हुई है, का निर्धारण करने के लिए चिकित्सा बोर्ड के समक्ष निर्दिष्ट करने के पश्चात् और पक्षकारों को सुनवाई करने का सम्यक् अवसर देने के पश्चात् नए सिरे से प्रतिकर निर्धारित करने के लिए विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण-II, सोलन के पास वापस भेजा जाता है।

10. उपर्युक्त सभी कारणों से, यह याचिका सफल होती है और तदनुसार, इसे स्वीकार किया जाता है। परिणामतः आक्षेपित अधिनिर्णय अभिखंडित और अपास्त किया जाता है। तथापि, मामले को इसमें उपर्युक्त व्यक्ति की गई मताभिव्यक्तियों के प्रकाश में निपटारे के लिए विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण-II, सोलन के पास वापस भेजा जाता है। पक्षकार, तारीख 20 फरवरी, 2013 को विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण-II, सोलन के समक्ष उपस्थित हों।

11. इन मताभिव्यक्तियों के साथ रिट याचिका के साथ ही लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हो, का भी निपटारा किया जाता है।

रिट याचिका मंजूर की गई।

क.

देव राज

बनाम

जोंकी राम

तारीख 13 मई, 2013

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 11 और आदेश 39, नियम 1 – प्रतिवादी द्वारा भूमि पर प्रतिकूल कब्जे के आधार पर स्वामित्व का दावा – प्रतिवादी द्वारा प्रतिकूल कब्जे को साबित करने के लिए कोई दस्तावेज़ी साक्ष्य पेश न किया जाना – वादी द्वारा अपने स्वामित्व को साबित करने के लिए जमाबंदी की प्रतियां और सीमांकन रिपोर्ट की प्रति दाखिल करना – प्रतिवादी का प्रतिकूल कब्जा साबित नहीं माना जा सकता – अतः व्यादेश के लिए निचले न्यायालय के आदेश उचित हैं ।

यह नियमित द्वितीय अपील, 2008 की सिविल अपील संख्या 113 में विद्वान् जिला न्यायाधीश, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 4 फरवरी, 2012 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे के संघटक साबित करने में विफल रहा है । लिखित कथन में यह कहा गया है कि प्रतिकूल कब्जा तारीख 1 अप्रैल, 1965 को उस समय प्रारंभ हुआ था जब उसके पिता ने निकट की भूमि खसरा संख्या 87 क्रय की थी । प्रतिकूल कब्जे को साबित करने के लिए प्रतिवादियों की प्रतिक्रिया के संबंध में डी. डब्ल्यू. 2 के कथन में कुछ भी नहीं है । उसके अनुसार प्रतिवादी और उसके भाई 1964-65 से 10 मरलस भूमि पर काबिज़ हैं । प्रतिवादियों द्वारा भूमि पर कभी भी कृषि नहीं की गई थी क्योंकि भूमि, बंजर-भूमि प्रकृति की है । वर्ष 2001-02 की जमाबंदी प्रदर्श पी. 1 के अनुसार वादियों के पिता वाद भूमि के स्वामी और काबिज़ अभिलिखित किए गए हैं । प्रतिवादी ने वाद भूमि पर अपने कब्जे को साबित करने के लिए कोई राजस्व अभिलेख, अभिलेख पर पेश नहीं किया है । यद्यपि प्रतिवादी ने यह साबित करने का प्रयत्न किया

है कि वह वाद भूमि पर मलबा डालता है, तथापि, इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि कब्जे को साबित करने के लिए वाद भूमि पर मलबा कब डाला गया था। वादी ने स्थायी व्यादेश के लिए और विकल्पतः कब्जे के लिए अनुरोध किया है। वादी के पिता द्वारा पूर्व में फाइल किए गए वाद का गुण-दोष के आधार पर विनिश्चय नहीं किया गया था। अतः पूर्व-न्याय का अभिवाक् ग्राह्य नहीं है। पूर्वतर वाद भिन्न वाद हेतुक के लिए फाइल किया गया था। पूर्वतर वाद प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए वादी के पिता द्वारा मात्र व्यादेश के लिए फाइल किया गया था। सीमांकन रिपोर्ट के अनुसार वादी अकेले ही वाद भूमि पर अवैध रूप से काबिज़ पाया गया था। इसे दृष्टिगत करते हुए उसके भाइयों को आवश्यक पक्षकार नहीं बनाया गया जैसा कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसिल श्री रमाकान्त शर्मा द्वारा दलील दी गई है। निचले न्यायालयों ने पक्षकारों द्वारा पेश किए गए मौखिक तथा दस्तावेज़ी साक्ष्य का ठीक ही मूल्यांकन किया है। (पैरा 10)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की नियमित द्वितीय अपील संख्या 182 ई.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील।

अपीलार्थी ओर से

श्री रमाकान्त शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से

श्री राजिन्दर डोगरा

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील, 2008 की सिविल अपील संख्या 113 में विद्वान् जिला न्यायाधीश, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 4 फरवरी, 2012 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है।

2. इस नियमित द्वितीय अपील के न्याय-निर्णयन के लिए आवश्यक मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी-वादी (जिसे आगे सुविधा के लिए संक्षेप में 'वादी' कहा गया है) ने अपीलार्थी-प्रतिवादी (जिसे आगे सुविधा के लिए संक्षेप में 'प्रतिवादी' कहा गया है) के विरुद्ध ग्राम टीका पन्धेर, तप्पा उगियलता, तहसील और जिला हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश स्थित भूमि खाता संख्या 154 मिनजुमला, खातौनी संख्या 156 मिनजुमला, खसरा संख्या 81, माप 3 कनाल 8 मरलस वाद भूमि के संबंध में स्थायी व्यादेश के लिए एक वाद फाइल किया था जिसमें वादी ने प्रतिवादी द्वारा वाद भूमि के ऊपर बलपूर्वक निर्माण करने में सफल होने की स्थिति में उसे गिराने का आदेश

करने और कब्ज़ा दिलाने के लिए अनुरोध किया था। वादी के अनुसार वाद भूमि उसके पिता की मिलकियत थी और उसके पिता श्री दास भूमि पर काबिज़ थे जिनकी तारीख 3 अगस्त, 2007 को मृत्यु हो गई थी। उसके पिता ने तारीख 17 नवंबर, 1992 को उसके हक में एक विल निष्पादित की थी और उस विल के अनुसार वादी वाद भूमि का आत्यांतिक स्वामी बन गया है और वाद भूमि उसके कब्ज़े में है। प्रतिवादी का वाद भूमि से कोई संबंध नहीं है। वादी के अनुसार प्रतिवादी वाद भूमि के आस-पास की भूमि का स्वामी है। प्रतिवादी ने वाद भूमि पर खड़े वृक्ष को काटने और वाद भूमि को खोदकर उसपर बलपूर्वक निर्माण कराने की धमकी दी है।

3. प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया था। प्रतिवादी के अनुसार वह वाद भूमि अर्थात् 10 मरलस वाद भूमि पर प्रतिकूल कब्ज़े के आधार पर स्वामी बन गया है। उसके अनुसार वादी वाद भूमि का स्वामी और उस पर काबिज़ नहीं है। वह (प्रतिवादी) अपने भाई के साथ तारीख 1 अप्रैल, 1965 से वाद भूमि के 10 मरलस पर काबिज़ है।

4. वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था। विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश ने तारीख 21 अक्टूबर, 2008 को विवाद्यक विरचित किए थे। विद्वान् सिविल न्यायाधीश ने तारीख 27 अप्रैल, 2010 को वाद डिक्री कर दिया। प्रतिवादी ने तारीख 27 अप्रैल, 2010 के निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर विद्वान् जिला न्यायाधीश हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश के समक्ष अपील फाइल की थी। विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 4 फरवरी, 2012 को उक्त अपील खारिज कर दी। अतः यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई है।

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री रमाकान्त शर्मा ने पत्रावली के पृष्ठ संख्या 7 और 8 पर विरचित विधि के सारभूत प्रश्नों के आधार पर बल देते हुए यह दलील दी है कि दोनों निचले न्यायालयों ने मौखिक तथा दस्तावेज़ी साक्ष्य का गलत परिशीलन और गलत निर्वचन किया है और उनके अनुसार उनके मुक्किल ने प्रतिकूल कब्ज़ा साबित कर दिया है और तत्पश्चात् उन्होंने यह दलील दी कि वादी द्वारा फाइल किया गया वर्तमान वाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 द्वारा वर्जित है। उन्होंने यह भी दलील दी कि वादी ने केवल स्थायी ब्यादेश के लिए वाद फाइल किया है और इसलिए वादी के हक में कब्ज़े की डिक्री पारित नहीं की जा सकती।

6. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री राजिन्दर डोगरा ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्रियों का समर्थन किया है ।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और दी गई दलीलों पर गहराई से विचार किया ।

8. वादी, पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपस्थित हुआ है । उसकी स्वामित्व के संबंध में तथा वाद भूमि के वाद हेतुक के संबंध में परीक्षा की गई है । उसने पी. डब्ल्यू. 2 कर्मचन्द की परीक्षा कराई है और पी. डब्ल्यू. 5 कुलदीप चन्द प्रत्युत्तर स्वरूप उपस्थित हुआ है । पी. डब्ल्यू. 3 श्रीमती सरोज कुमारी ने सीमांकन से संबंधित अभिलेख पेश किए हैं । वादी ने वर्ष 2001-02 से संबंधित जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी. 1 अभिलेख पर पेश की है जो वाद भूमि से संबंधित है और जिसके अनुसार वादी के पिता को वाद भूमि का स्वामी और काबिज़ उपदर्शित किया गया है, तथापि, श्री दास की मृत्यु के पश्चात् वादी के हक में नामांतरण किया गया है तथापि, यह नामांतरण अभी तक मंजूर नहीं हुआ है ।

9. प्रतिवादी डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपस्थित हुआ है । उसके अनुसार वह 10 मरलस माप की वाद भूमि पर काबिज़ था । डी. डब्ल्यू. 2 देशराज ने डी. डब्ल्यू. 1 के कथन का समर्थन किया है । प्रतिवादी ने अभिलेख पर दस्तावेज़ प्रदर्श डी-1 से डी-6 और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए तथा प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/बी प्रस्तुत किए हैं । प्रदर्श डी-1 सिविल वाद संख्या 2/2006 के वाद पत्र की प्रति है जो दास बनाम देशराज के शीर्षक से है और जो वाद पूर्व में वादी के पिता द्वारा फाइल किया गया था । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए तारीख 20 जून, 2008 के आदेश की प्रति है । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/बी तारीख 11 दिसंबर, 2006 के आदेश की प्रति है जिसके द्वारा प्रश्नगत सीमांकन की पुष्टि की गई थी । प्रदर्श डा-4 और डी-6 तारीख 18 जून, 2005 की सीमांकन रिपोर्ट की प्रति है, जिसके अनुसार प्रतिवादी खसरा संख्या 81/1 वाद भूमि के 10 मरलस पर अवैध रूप से काबिज़ पाया गया था । प्रदर्श डी-2, डी-3 वादी और उसके पिता के कथनों की प्रतियां हैं, जो सीमांकन के समय अभिलिखित किए गए थे और प्रदर्श डी-5 फील्ड बुक की प्रति है जो सीमांकन के समय तैयार की गई थी ।

10. प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे के संघटक साबित करने में विफल रहा है । लिखित कथन में यह कहा गया है कि प्रतिकूल कब्जा तारीख 1 अप्रैल, 1965 को उस समय प्रारंभ हुआ था जब उसके पिता ने निकट की

भूमि खसरा संख्या 87 क्रय की थी। प्रतिकूल कब्जे को साबित करने के लिए प्रतिवादियों की प्रतिक्रिया के संबंध में डी. डब्ल्यू. 2 के कथन में कुछ भी नहीं है। उसके अनुसार प्रतिवादी और उसके भाई 1964-65 से 10 मरलस भूमि पर काबिज़ हैं। प्रतिवादियों द्वारा भूमि पर कभी भी कृषि नहीं की गई थी क्योंकि भूमि, बंजर-भूमि प्रकृति की है। वर्ष 2001-02 की जमाबंदी प्रदर्श पी. 1 के अनुसार वादियों के पिता वाद भूमि के स्वामी और काबिज़ अभिलिखित किए गए हैं। प्रतिवादी ने वाद भूमि पर अपने कब्जे को साबित करने के लिए कोई राजस्व अभिलेख, अभिलेख पर पेश नहीं किया है। यद्यपि प्रतिवादी ने यह साबित करने का प्रयत्न किया है कि वह वाद भूमि पर मलबा डालता है, तथापि, इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि कब्जे को साबित करने के लिए वाद भूमि पर मलबा कब डाला गया था। वादी ने स्थायी व्यादेश के लिए और विकल्पतः कब्जे के लिए अनुरोध किया है। वादी के पिता द्वारा पूर्व में फाइल किए गए वाद का गुण-दोष के आधार पर विनिश्चय नहीं किया गया था। अतः पूर्व-न्याय का अभिवाक् ग्राह्य नहीं है। पूर्वतर वाद भिन्न वाद हेतुक के लिए फाइल किया गया था। पूर्वतर वाद प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए वादी के पिता द्वारा मात्र व्यादेश के लिए फाइल किया गया था। सीमांकन रिपोर्ट के अनुसार वादी अकेले ही वाद भूमि पर अवैध रूप से काबिज़ पाया गया था। इसे दृष्टिगत करते हुए उसके भाइयों को आवश्यक पक्षकार नहीं बनाया गया जैसा कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री रमाकान्त शर्मा द्वारा दलील दी गई है। निचले न्यायालयों ने पक्षकारों द्वारा पेश किए गए मौखिक तथा दस्तावेज़ी साक्ष्य का ठीक ही मूल्यांकन किया है।

11. तदनुसार ऊपर अभिव्यक्त मत और विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए इस नियमित द्वितीय अपील में कोई बल नहीं है और इसलिए यह खारिज की जाती है। लंबित आवेदनों को यदि कोई हों, निपटाया जाता है। खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

अपील खारिज की गई।

मह.

डा. वाई. एस. परमार यू. एच. एफ़. के सेवानिवृत्त अध्यापकों/
वैज्ञानिकों की कल्याण सोसाइटी, सोलन

बनाम

डा. वाई. एस. परमार विश्वविद्यालय के एच. एंड एफ़. सोलन,
हिमाचल प्रदेश और अन्य

तारीख 24 जून, 2013

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय कृषि, बाग़बानी और वन अधिनियम, 1986 – धारा 42 और 44(4) [सपटित विश्वविद्यालय स्टेच्यूट्स का स्टेच्यूट 9.27 तथा संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14] – विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त अध्यापक और वैज्ञानिकों को सेवानिवृत्ति फायदे – विश्वविद्यालय कर्मचारियों को वही नियम लागू होना जो राज्य सरकार के कर्मचारियों को लागू होते हैं – उपदान और सेवानिवृत्ति फायदे देने में विभेद – विधिमान्यता – ऐसा विभेद मनमाना और संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी माना जाएगा ।

याची सोसाइटी के अध्यापकों, वैज्ञानिकों और कर्मचारियों ने प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के विभेदपूर्ण आदेशों से व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्टेच्यूट्स के स्टेच्यूट 9.27 के अनुसार विश्वविद्यालय कर्मचारियों के मामले में पेंशन-सहयुक्त-उपदान-सहयुक्त-भविष्य निधि के लिए नियम जो इस स्कीम के अधीन आते हैं, वही होंगे जो हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा समय-समय पर अपने कर्मचारियों के लिए लागू किए गए हैं सिवाय इसके कि सामान्य भविष्य निधि पर भविष्य निधि अभिदाता के लिए संदेय ब्याज बैंक द्वारा निक्षेपों पर अनुज्ञात ब्याज की अधिकतम दर से आधा प्रतिशत कम होगा । राज्य सरकार ने तारीख 14 अक्टूबर, 2009 को तारीख 1 जनवरी, 2006 को 2006 से पूर्व के पेंशनधारियों/कुटुम्ब पेंशनधारियों की पेंशन/कुटुम्ब पेंशन के लिए तारीख 1 जनवरी, 2006 से विनियमित करने के लिए मंजूरी लेने के लिए कार्यालय ज्ञापन जारी किया था जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है । उन कर्मचारियों के संबंध में पृथक् आदेश

जारी किए जाने थे जो तारीख 1 जनवरी, 2006 को या उसके पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे या जिनकी मृत्यु हुई थी। तारीख 14 अक्टूबर, 2009 की अधिसूचना के अनुसार पुनरीक्षित दर से पेंशन तारीख 1 अक्टूबर, 2009 से संदत्त की जानी थी अर्थात् पुनरीक्षित पेंशन अक्टूबर, 2009 से संदेय थी जो नवंबर, 2009 में संदत्त की जानी थी। तारीख 1 जनवरी, 2006 से तारीख 30 सितंबर, 2009 की अवधि के लिए पेंशन/कुटुम्ब पेंशन की समेकित आधार पर बकाया पर विनिश्चय सम्यक् समय पर लिया जाना था। ऐसा ही ज्ञापन तारीख 14 अक्टूबर, 2009 को उन कर्मचारियों के लिए जारी किया गया था जो तारीख 1 जनवरी, 2006 के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे। जब एक बार प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय द्वारा तारीख 1 जनवरी, 2006 से पेंशन निर्मुक्त करने के लिए विवेकपूर्ण विनिश्चय ले लिया गया था तो यही विनिश्चय याची-सोसाइटी के सदस्यों के हक में बकाया की निर्मुक्ति के लिए भी लिया जाना चाहिए था। वर्तमान मामले में राज्य सरकार के सभी कर्मचारियों को तारीख 1 अक्टूबर, 2009 से पुनरीक्षित पेंशन का संदाय कर दिया गया है और तारीख 1 जनवरी, 2006 से पेंशन की बकाया का विनिश्चय स्थगित कर दिया गया है। तथापि, विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के मामले में तारीख 1 जनवरी, 2006 के बजाय तारीख 1 अप्रैल, 2011 से पुनरीक्षित पेंशन संदत्त की गई है। जहां तक उपदान का संबंध है, राज्य सरकार के कर्मचारियों के लिए अधिकतम सीमा 10 लाख रुपए है। तथापि, प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को तारीख 19 जुलाई, 2011 की संसूचना द्वारा उपदान 3.50 लाख रुपए की सीमा तक निर्बंधित करने का निदेश दिया गया है। उपदान एक मूल्यवान अधिकार है और राज्य सरकार इसे 3.50 लाख रुपए तक निर्बंधित नहीं कर सकती। उप-कुलपति ने इस स्थिति को ठीक ही स्पष्ट किया है। हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय कृषि, बागबानी और वन अधिनियम, 1986 की धारा 44(4) के अनुसार राज्य सरकार विश्वविद्यालय निधियों के लिए ऐसा गैर-व्यपगत एकमुश्त अनुदान देने के लिए आबद्ध है जो विश्वविद्यालय के स्टाफ के वेतन और भत्तों, अत्यावश्यकताओं, प्रदायों के प्राक्कलित निबल खर्च से कम न हो और जिसमें नई स्कीमों और योजनाओं, वेतनमानों के पुनरीक्षण, वेतन वृद्धियों, महंगाई भत्ते में बढ़ोतरी और स्टाफ को संदेय अन्य भत्तों के लिए तथा विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं के अनुसार अतिरिक्त खर्च, आवर्ती, गैर आवर्ती खर्चों को पूरा करने के लिए अनुदान में वार्षिक बढ़ोतरी सम्मिलित है। विश्वविद्यालय एक शैक्षिक संस्था है और यह आई. सी. ए.

आर. या राज्य सरकार की निधियों पर निर्भर है । विश्वविद्यालय ने एक महत्वपूर्ण विनिश्चय लिया और इस संबंध में राज्य सरकार को यह सूचित किया कि जहां तक तारीख 1 जनवरी, 1996 से तारीख 31 मार्च, 2011 की अवधि के बीच सेवानिवृत्त/मृत कर्मचारियों के संबंध में उपदान की वित्तीय विवक्षाओं का संबंध है, यह विश्वविद्यालय की आंतरिक आय से पूरी की जाएगी । पेंशन एक मूल अधिकार है और इसलिए प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय वित्तीय कठिनाई का अभिवाक् नहीं कर सकता । विश्वविद्यालय एक समृद्ध बैंक हैं । अध्यापक और वैज्ञानिक सोसाइटी के विवेकपूर्ण कार्यकर्ता हैं । राष्ट्र के निर्माण में अध्यापकों का योगदान होता है । अध्यापकों के देयों को देय तारीख पर ही संदत्त किया जाना चाहिए । यदि देयों का संदाय नहीं किया जाता है और वह भी पेंशनधारियों को तो अध्यापक और वैज्ञानिक स्वयं को अध्यापक और वैज्ञानिक बनने के विनिश्चय पर पछताएंगे । विश्वविद्यालय का सृजन अधिनियम द्वारा होता है । प्रत्यर्थी-राज्य का यह कानूनी कर्तव्य है कि वह विश्वविद्यालय द्वारा व्यपगत खर्चों के संबंध में सहायता अनुदान जारी करे । विश्वविद्यालय स्वयं अपनी आय सृजित नहीं कर सकता और वह पूर्ण रूप से या तो आई. सी. ए. आर. या राज्य सरकार से सहायता अनुदान जारी करने पर निर्भर करता है । हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय कृषि, बागबानी और वन अधिनियम, 1986 की धारा 44(4) तथा तारीख 19 मार्च, 1991 को अधिसूचित सहायता अनुदान नियमों के अनुसार राज्य सरकार इस बात के लिए आबद्ध है कि वह विश्वविद्यालय के स्टाफ के वेतन और भत्तों, अत्यावश्यकताओं, प्रदायों और सेवाओं के लिए पर्याप्त निधियों का इंतजाम करे । धारा 44(4) प्रमिततः राज्य सरकार द्वारा प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को सहायता अनुदान का संदाय करने के लिए एक वचनबंध है । यदि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को धारा 44(4) तथा सहायता अनुदान नियमों के अनुसार सहायता अनुदान का संदाय नहीं किया जाता है तो उसका शैक्षिक स्तर पूर्ण रूप से प्रभावित होगा । ऊपर किए गए विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय का पेंशन की बकाया के संदाय को स्थगित करने का विनिश्चय मनमाना और अयुक्तियुक्त है और इसलिए यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमणकारी है । प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय तारीख 1 जनवरी, 2006 से तारीख 31 मार्च, 2011 तक बकाया का संदाय करने के लिए आबद्ध है । समान रूप में प्रत्यर्थी-राज्य

को मृत्यु-सहयुक्त-सेवानिवृत्ति उपदान 3.5 लाख रुपए तक निर्बंधित करने की कोई अधिकारिता नहीं है। स्टेच्यूट 9.27 के अनुसार स्कीम के अन्तर्गत आने वाले विश्वविद्यालय कर्मचारियों के मामले में पेंशन-सहयुक्त-उपदान-सहयुक्त-भविष्य निधि के लिए नियम वही हैं जिनका हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा समय-समय पर अपने कर्मचारियों के मामले में अनुसरण किया गया है। चूंकि राज्य सरकार के कर्मचारियों के मामले में उपदान 3.5 लाख रुपए निर्बंधित नहीं किया गया है इसलिए प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त कर्मचारियों के मामले में इसे निर्बंधित करने का निदेश जारी नहीं किया जा सकता। प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा उपदान 3.5 लाख रुपए निर्बंधित किए जाने की सिफारिशें मनमानी हैं। पेंशन और उपदान भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-क के अर्थान्तर्गत संपत्ति है। इससे विधि के उपबंधों के सिवाय इनकार नहीं किया जा सकता। याची-सोसाइटी के सदस्य पेंशन पाने और अपनी सेवानिवृत्ति के तुरन्त पश्चात् अन्य सेवानिवृत्ति फायदों और समय-समय पर पुनरीक्षित फायदों के लिए हकदार बन गए हैं। तदनुसार ऊपर की गई मताभिव्यक्तियों और विवेचना को दृष्टिगत करते हुए यह रिट याचिका मंजूर की जाती है। तारीख 19 जुलाई, 2011 के पत्र में 3.50 लाख रुपए की सीमा तक उपदान को निर्बंधित करने का विनिश्चय विच्छेदन के सिद्धांत को लागू करने के पश्चात् अभिखंडित किया जाता है। प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह याची-सोसाइटी के सदस्यों को तारीख 1 जनवरी, 2006 से तारीख 31 मार्च, 2011 तक 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित पुनरीक्षित पेंशन की बकाया का संदाय करे। प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को यह भी निदेश दिया जाता है कि वह याची-सोसाइटी के सदस्यों को तारीख 1 जनवरी, 2006 से पुनरीक्षित दर पर राज्य सरकार के कर्मचारियों के समान अधिकतम 10 लाख रुपए की सीमा तक ब्याज सहित मृत्यु-सहयुक्त-सेवानिवृत्ति उपदान की बकाया का संदाय करे जैसा कि केन्द्रीय सिविल सेवा (पेंशन) नियम, 1972 के नियम 68 के साथ संलग्न अनुदेश सं. II के साथ पठित नियम 68 के अधीन विहित किया गया है। आदेश का पालन आज से 8 सप्ताह की अवधि के भीतर किया जाए। राज्य सरकार प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के अध्यापकों/वैज्ञानिकों द्वारा झेली जा रही कठिनाई को समाप्त करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र तथापि, आज से 3 मास से अनधिक की अवधि में सहायता अनुदान जारी करने के लिए निदेश जारी करे। (पैरा 7, 9, 10, 11, 12, 16, 17, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013]	(2013) 1 एस. सी. सी. 223 : नेशनल काउंसिल फार टीचर्स एजुकेशन और अन्य बनाम पब्लिक एजुकेशन सोसाइटी और अन्य ;	13
[2011]	(2011) 11 एस. सी. सी. 702 : पेप्सू रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन पटियाला बनाम मंगल सिंह और अन्य ;	20
[1992]	(1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 664 : अखिल भारतीय रिजर्व बैंक के सेवानिवृत्त अधिकारी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य ।	19

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2012 की सिविल रिट याचिका सं. 3507.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से

श्री आर. एस. गौतम

प्रत्यर्थी की ओर से

सर्वश्री अजीत सकलानी, प्रमोद
ठाकुर, (सुश्री) मीनाक्षी शर्मा और
नीरज के. शर्मा

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – याची-सोसाइटी हिमाचल प्रदेश सोसाइटीज रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 2006 के अधीन सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है । सोसाइटी के 66 सदस्य हैं जो कि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त आचार्य/वैज्ञानिक हैं । वे हिमाचल प्रदेश सरकारी कर्मचारियों के सादृश केन्द्रीय सिविल सेवा (पेंशन) नियम, 1972 द्वारा विनियमित होते हैं । हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल ने तारीख 14 अक्टूबर, 2009 को एक कार्यालय ज्ञापन जारी किया था जिसके द्वारा 2006 से पूर्व और पश्चात् के सभी पेंशनधारियों/कुटुम्ब पेंशनधारियों को तारीख 1 जनवरी, 2006 से विनियमों के अधीन लाया गया था । यह कार्यालय ज्ञापन उन सभी पेंशनधारियों/कुटुम्ब पेंशनधारियों को लागू किया गया था जो केन्द्रीय सिविल सेवा पेंशन नियम, 1972 के अधीन तारीख 1 जनवरी, 2006 को

पेंशन/कुटुम्ब पेंशन प्राप्त कर रहे थे । तारीख 14 अक्टूबर, 2009 को ऐसा ही कार्यालय ज्ञापन उन सरकारी सेवकों की पेंशन/कुटुम्ब पेंशन/उपदान/पेंशन संराशिकरण को विनियमित करने के संबंध में जारी किया गया था जो तारीख 1 जनवरी, 2006 को या उसके पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे या बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हुई थी । चूंकि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय ने तारीख 14 अक्टूबर, 2009 के उपाबंध पी-4 और पी-5 पर कोई कार्रवाई नहीं की इसलिए याची-सोसाइटी ने इस अनुरोध के साथ 2011 की सिविल रिट याचिका संख्या 834 फाइल की कि प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे पेंशन नियमों/आदेशों/तारीख 14 अक्टूबर, 2009 के ज्ञापन के भाग-I और भाग-II के पुनरीक्षण के आधार पर ब्याज सहित सेवानिवृत्ति फायदा तथा ऐसे पुनरीक्षण के आधार पर देय बकाया का संदाय करें । इस न्यायालय ने 2011 की सिविल रिट याचिका संख्या 834 प्रत्यर्थियों को यह निदेश देते हुए निपटाई थी कि वे निर्णय की प्रति को पेश करने की तारीख से एक मास की अवधि के भीतर मामले में अंतिम विनिश्चय लें । प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 5 मार्च, 2011 के निर्णय के अनुसरण में तारीख 25 अप्रैल, 2011 को अधिसूचना जारी की जिसके द्वारा उप-कुलपति ने राज्य सरकार के सादृश तारीख 1 जनवरी, 2006 से विश्वविद्यालय के 2006 से पूर्व पेंशनधारियों/कुटुम्ब पेंशनधारियों के संबंध में पेंशन संबंधी फायदों को पुनरीक्षित किया । तथापि, पुनरीक्षित पेंशन से संबंधित पेंशन/कुटुम्ब पेंशन का संदाय तारीख 1 अप्रैल, 2011 से किया गया था । पुनरीक्षित दरों पर मृत्यु-सहयुक्त-सेवानिवृत्ति उपदान के संदाय के आधार पर अर्जित बकायों का संदाय राज्य सरकार से अनुमोदन प्राप्त होने के पश्चात् ही और इस प्रयोजन के लिए अतिरिक्त निधियां प्राप्त होने के पश्चात् ही किया जाना था । राज्य सरकार ने तारीख 19 जुलाई, 2011 को प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को कतिपय अनुदेश जारी किए । इन अनुदेशों के अनुसार विश्वविद्यालय के प्रबंध बोर्ड को यह निदेश दिया गया था कि वे 3.50 लाख रुपए की सीमा तक उपदान को नियत करने पर विचार करें जैसा कि पूर्व-पुनरीक्षित अनुदेशों के अधीन तारीख 1 जनवरी, 2006 को लागू है । प्रबंध बोर्ड को पेंशन समग्र निधि की स्थिति को दृष्टिगत करते हुए पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर बकाया के संदाय के संबंध में अंतिम विनिश्चय करने के लिए भी निदेश दिया गया था । प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के उप-कुलपति ने तारीख 14 अक्टूबर, 2011 के पत्र द्वारा यह स्पष्ट किया कि स्टेच्यूट 9.27 को दृष्टिगत करते हुए विश्वविद्यालय कर्मचारी/पेंशनधारी राज्य सरकार के

कर्मचारियों/पेंशनधारियों के समान हैं और इसलिए कर्मचारियों/पेंशनधारियों को पेंशन संबंधी फायदों को विनियमित करने वाले उपबंधों के तारीख 1 जनवरी, 2006 से भागतः क्रियान्वयन से मुकदमेबाजी हो सकती है। यह भी स्पष्ट किया गया था कि विश्वविद्यालय के तारीख 1 जनवरी, 2006 से 31 मार्च, 2011 के बीच सेवानिवृत्त/मृत कर्मचारियों के संबंध में उपदान पर वित्तीय विवक्षाएं जो कि 4.50 करोड़ रुपए बनती हैं, विश्वविद्यालय की आंतरिक आय से पूरी की जाएंगी। समान रूप में उस समय विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारियों के संबंध में सेवानिवृत्ति उपदान पर खर्च वर्षवार आधार पर आंतरिक आय से पूरा किया जाएगा। याची-सोसाइटी ने पेंशन और बढ़े हुए उपदान की बकाया को जारी करने के लिए उप-कुलपति को तारीख 8 नवंबर, 2011 को एक अभ्यावेदन दिया। इस संबंध में तारीख 3 दिसंबर, 2011 को एक अनुस्मारक भी भेजा गया था।

2. श्री आर. एस. गौतम ने बल देकर यह दलील दी है कि जब एक बार तारीख 25 अप्रैल, 2011 को विवेकपूर्ण विनिश्चय ले लिया गया था तो विश्वविद्यालय इस बात के लिए आबद्ध था कि वह बकाया के साथ पेंशन/उपदान निर्मुक्त करे। तत्पश्चात् उन्होंने यह दलील दी कि याची सोसाइटी के सदस्यों को तारीख 1 अप्रैल, 2011 से बढ़ी हुई पेंशन संदत्त की गई है, तथापि, मृत्यु-सहयुक्त-सेवानिवृत्ति उपदान पुनरीक्षित दर पर अभी तक संदत्त नहीं किया गया है। उन्होंने यह भी दलील दी कि प्रत्यर्थी-राज्य की यह कानूनी बाध्यता है कि वह सहायता-अनुदान जारी करे। उन्होंने यह भी दलील दी है कि राज्य सरकार द्वारा उपदान 3.5 लाख रुपए की सीमा तक निर्बंधित नहीं किया जा सकता।

3. श्री अजीत सकलानी ने यह दलील दी कि वित्तीय कठिनाई के कारण तारीख 1 जनवरी, 2006 से तारीख 31 मार्च, 2011 तक पुनरीक्षित पेंशन और उपदान की बकाया संदत्त नहीं की जा सकी।

4. विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री प्रमोद ठाकुर ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय का यह कर्तव्य है कि वह पेंशन की बकाया का संदाय करने के लिए निधियों का इंतजाम करे और उपदान को भी निर्मुक्त करे।

5. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसलों को सुना और अभिवचनों का

सावधानीपूर्वक परिशीलन किया ।

6. हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय कृषि, बागबानी और वन अधिनियम, 1986 की धारा 42 के अनुसार विश्वविद्यालय से यह अपेक्षित है कि वह अपने अधिकारियों, अध्यापकों, लिपिकीय स्टाफ और अन्य कर्मचारियों के फायदे के लिए ऐसी रीति में और ऐसी शर्तों के अधीन जो विहित की जाएं, ऐसी पेंशन, बीमा और भविष्य निधि जैसा कि वह ठीक समझे, का उपबंध करे और विश्वविद्यालय द्वारा इस प्रकार उपबंध की गई ऐसी पेंशन, बीमा और भविष्य निधि के लिए सरकार यह घोषणा कर सकती है कि भविष्य निधि, अधिनियम 1925 के उपबंध ऐसी निधि को इस प्रकार लागू होंगे मानो यह सरकारी भविष्य निधि है बशर्ते विश्वविद्यालय को भविष्य निधि की धनराशि ऐसी रीति में विनियोग करने की शक्ति होगी जैसी कि अवधारित की जाए । धारा 44 (4) के अनुसार राज्य सरकार निधियों की उपलब्धता के अधीन विश्वविद्यालय को प्रत्येक वर्ष निम्न प्रकार से एकमुश्त गैर-व्यपगत अनुदान प्रदान करेगी :-

“(क) ऐसा अनुदान जो विश्वविद्यालय के स्टाफ वेतन और भत्तों, अत्यावश्यकताओं, प्रदायों और सेवाओं के लिए प्राक्कलित निबल खर्चों से अन्यून हो ; और

(ख) नई स्कीमों और योजनाओं, वेतनमानों के पुनरीक्षण, वेतन वृद्धियों, महंगाई भत्ते में बढ़ोतरी और स्टाफ को संदेय अन्य भत्तों के लिए विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं के अनुसार ऐसे अतिरिक्त खर्चों, आवर्ती, गैर आवर्ती खर्चों को पूरा करने के लिए अनुदान में वार्षिक बढ़ोतरी ।”

7. स्टेच्यूट्स के स्टेच्यूट 9.27 के अनुसार विश्वविद्यालय कर्मचारियों के मामले में पेंशन-सहयुक्त-उपदान-सहयुक्त-भविष्य निधि के लिए नियम जो इस स्कीम के अधीन आते हैं, वही होंगे जो हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा समय-समय पर अपने कर्मचारियों के लिए लागू किए गए हैं सिवाय इसके कि सामान्य भविष्य निधि पर भविष्य निधि अभिदाता के लिए संदेय ब्याज बैंक द्वारा निक्षेपों पर अनुज्ञात ब्याज की अधिकतम दर से आधा प्रतिशत कम होगा । राज्य सरकार ने तारीख 14 अक्टूबर, 2009 को 2006 से पूर्व के पेंशनधारियों/कुटुम्ब पेंशनधारियों की पेंशन/कुटुम्ब पेंशन के लिए तारीख 1 जनवरी, 2006 से विनियमित करने के लिए मंजूरी लेने के लिए कार्यालय ज्ञापन जारी किया था जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है ।

उन कर्मचारियों के संबंध में पृथक् आदेश जारी किए जाने थे जो तारीख 1 जनवरी, 2006 को या उसके पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे या जिनकी मृत्यु हुई थी। तारीख 14 अक्टूबर, 2009 की अधिसूचना के अनुसार पुनरीक्षित दर से पेंशन तारीख 1 अक्टूबर, 2009 से संदत्त की जानी थी अर्थात् पुनरीक्षित पेंशन अक्टूबर, 2009 से संदेय थी जो नवंबर, 2009 में संदत्त की जानी थी। तारीख 1 जनवरी, 2006 से तारीख 30 सितंबर, 2009 की अवधि के लिए पेंशन/कुटुम्ब पेंशन की समेकित आधार पर बकाया पर विनिश्चय सम्यक् समय पर लिया जाना था। ऐसा ही ज्ञापन तारीख 14 अक्टूबर, 2009 को उन कर्मचारियों के लिए जारी किया गया था जो तारीख 1 जनवरी, 2006 के पश्चात् सेवानिवृत्त हुए थे।

8. प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को तारीख 5 मार्च, 2011 को 2011 की सिविल रिट याचिका सं. 834 में अंतिम विनिश्चय लेने का निदेश दिया गया था। तारीख 25 अप्रैल, 2011 को एक अधिसूचना जारी की गई थी जिसके द्वारा सरकारी कर्मचारियों के समान तारीख 1 जनवरी, 2006 से पेंशन पुनरीक्षित की गई थी, तथापि, पुनरीक्षित पेंशन नियमों के अधीन पेंशन/कुटुम्ब पेंशन का संदाय तारीख 1 अप्रैल, 2011 से किया गया था। तथापि, बकाया का संदाय इस धनराशि पर निकाला गया था और पुनरीक्षित दरों पर मृत्यु-सहयुक्त-सेवानिवृत्ति उपदान का संदाय राज्य सरकार से अनुमोदन प्राप्त करने और अतिरिक्त निधि प्राप्त करने के पश्चात् ही किया जाना था। तथ्यतः मामला यह है कि याची-सोसाइटी के सदस्यों को तारीख 1 जनवरी, 2006 से तारीख 31 मार्च, 2011 तक पुनरीक्षित पेंशन का संदाय नहीं किया गया है। राज्य सरकार ने प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को तारीख 19 जुलाई 2011 को कतिपय निदेश जारी किए जिनके द्वारा यह प्रस्तावित किया गया था कि विश्वविद्यालय का प्रबंध बोर्ड तारीख 14 अक्टूबर, 2009 के कार्यालय ज्ञापन के अनुसरण में उनको लागू सीमा तक 2006 से पूर्व के पेंशनधारियों/कुटुम्ब पेंशनधारियों की पेंशन/कुटुम्ब पेंशन पुनरीक्षित करने के लिए विचार कर सकेगा। प्रबंध बोर्ड को यह भी निदेश दिया गया था कि विश्वविद्यालय के मामले में उपदान की सीमा 3.50 लाख रुपए तक निर्बंधित की जाए जैसा कि पुनरीक्षण पूर्व के अनुदेशों के अधीन तारीख 1 जनवरी, 2006 को लागू था। प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के उप-कुलपति ने तारीख 14 अक्टूबर, 2011 को यह स्पष्ट किया कि स्टेच्यूट्स के स्टेच्यूट 9.27 को दृष्टिगत करते हुए विश्वविद्यालय

के कर्मचारी और राज्य सरकार के कर्मचारी एक समान हैं। उप-कुलपति ने राज्य सरकार को यह भी सूचित किया कि तारीख 1 जनवरी, 2006 से तारीख 31 मार्च, 2011 की अवधि के बीच विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त/मृत कर्मचारियों के संबंध में उपदान के संबंध में वित्तीय विवक्षाओं को जो 4.50 करोड़ रुपए तक बनती हैं, विश्वविद्यालय की आंतरिक आय से पूरा किया जाएगा। समान रूप में उस समय सेवानिवृत्ति होने वाले विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के संबंध में सेवानिवृत्ति उपदान पर खर्च वर्षवार आंतरिक आय से पूरा किया जाएगा। इसे दृष्टिगत करते हुए उप-कुलपति ने राज्य सरकार से विश्वविद्यालय के कर्मचारियों/सेवानिवृत्त कर्मचारियों के संबंध में विनिश्चय पर पुनः विचार करने का अनुरोध किया था।

9. जब एक बार प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय द्वारा तारीख 1 जनवरी, 2006 से पेंशन निर्मुक्त करने के लिए विवेकपूर्ण विनिश्चय ले लिया गया था तो यही विनिश्चय याची-सोसाइटी के सदस्यों के हक में बकाया की निर्मुक्ति के लिए भी लिया जाना चाहिए था। वर्तमान मामले में राज्य सरकार के सभी कर्मचारियों को तारीख 1 अक्टूबर, 2009 से पुनरीक्षित पेंशन का संदाय कर दिया गया है और तारीख 1 जनवरी, 2006 से पेंशन की बकाया का विनिश्चय स्थगित कर दिया गया है। तथापि, विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के मामले में तारीख 1 जनवरी, 2006 के बजाय तारीख 1 अप्रैल, 2011 से पुनरीक्षित पेंशन संदत्त की गई है।

10. जहां तक उपदान का संबंध है, राज्य सरकार के कर्मचारियों के लिए अधिकतम सीमा 10 लाख रुपए है। तथापि, प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को तारीख 19 जुलाई, 2011 की संसूचना द्वारा उपदान 3.50 लाख रुपए की सीमा तक निर्बंधित करने का निदेश दिया गया है। उपदान एक मूल्यवान अधिकार है और राज्य सरकार इसे 3.50 लाख रुपए तक निर्बंधित नहीं कर सकती। उप-कुलपति ने इस स्थिति को ठीक ही स्पष्ट किया है।

11. हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय कृषि, बागबानी और वन अधिनियम, 1986 की धारा 44(4) के अनुसार राज्य सरकार विश्वविद्यालय निधियों के लिए ऐसा गैर-व्यपगत एकमुश्त अनुदान देने के लिए आबद्ध है जो विश्वविद्यालय के स्टाफ के वेतन और भत्तों, अत्यावश्यकताओं, प्रदायों के प्राक्कलित निबल खर्च से कम न हो और जिसमें नई स्कीमों और योजनाओं, वेतनमानों के पुनरीक्षण, वेतन वृद्धियों, महंगाई भत्ते में बढ़ोतरी

और स्टाफ़ को संदेय अन्य भत्तों के लिए तथा विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं के अनुसार अतिरिक्त खर्च, आवर्ती, गैर आवर्ती खर्चों को पूरा करने के लिए अनुदान में वार्षिक बढ़ोतरी सम्मिलित है। विश्वविद्यालय एक शैक्षिक संस्था है और यह आई. सी. ए. आर. या राज्य सरकार की निधियों पर निर्भर है। विश्वविद्यालय ने एक महत्वपूर्ण विनिश्चय लिया और इस संबंध में राज्य सरकार को यह सूचित किया कि जहां तक तारीख 1 जनवरी, 1996 से तारीख 31 मार्च, 2011 की अवधि के बीच सेवानिवृत्त/मृत कर्मचारियों के संबंध में उपदान की वित्तीय विवक्षाओं का संबंध है, यह विश्वविद्यालय की आंतरिक आय से पूरी की जाएगी। पेंशन एक मूल अधिकार है और इसलिए प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय वित्तीय कठिनाई का अभिवाक् नहीं कर सकता।

12. विश्वविद्यालय एक समृद्ध बैंक हैं। अध्यापक और वैज्ञानिक सोसाइटी के विवेकपूर्ण कार्यकर्ता हैं। राष्ट्र के निर्माण में अध्यापकों का योगदान होता है। अध्यापकों के देयों को देय तारीख पर ही संदत्त किया जाना चाहिए। यदि देयों का संदाय नहीं किया जाता है और वह भी पेंशनधारियों को तो अध्यापक और वैज्ञानिक स्वयं को अध्यापक और वैज्ञानिक बनने के विनिश्चय पर पछताएंगे। विश्वविद्यालय का सृजन अधिनियम द्वारा होता है। प्रत्यर्थी-राज्य का यह कानूनी कर्तव्य है कि वह विश्वविद्यालय द्वारा व्यपगत खर्चों के संबंध में सहायता अनुदान जारी करे। विश्वविद्यालय स्वयं अपनी आय सृजित नहीं कर सकता और वह पूर्ण रूप से या तो आई. सी. ए. आर. या राज्य सरकार से सहायता अनुदान जारी करने पर निर्भर करता है।

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने नेशनल काउंसिल फार टीचर्स एजुकेशन और अन्य बनाम पब्लिक एजुकेशन सोसाइटी और अन्य¹ वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी रीति में कोई बेहतर अध्यापक साधारणतया देश की सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने उक्त मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

“इज़ाजत दी जाती है। शिक्षा प्रदान करने के लिए ज्ञान का अर्जन और आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करना उनकी महत्वपूर्ण आवश्यकता है। चूंकि सी. साइमन्स ने इस प्रकार कहा है – ‘सफल

¹ (2013) 1 एस. सी. सी. 223.

अध्यापन का राज़ सही रूप से, गहन रूप से और गंभीरतापूर्वक अध्यापन करना है और उपयोगी रूप से यह भी कहा जा सकता है कि निश्चितता और गहनता परिष्कृत शिक्षा, सही प्रशिक्षण और ज्ञान की अभिलाषा से प्राप्त की जा सकती है। इसी कारण से अध्यापन अध्यापक का शौक और उसका धर्म बन जाता है। किसी भी प्रकार से कोई बेहतर अध्यापक साधारणतया देश की नागरिकता (सभ्यता) का प्रतिनिधित्व करता है। किसी अध्यापक से यह प्रत्याशित है कि वह अन्वेषण, ज्ञान की निरंतर वृद्धि और अनुभव के प्रदर्शन की रीति द्वारा अध्यापन में अधिक दिलचस्पी ले जो समझदारीपूर्ण उपयोगितावाद से परिपूर्ण हो। किसी छात्र को जो प्रशिक्षण प्राप्त करने का इच्छुक है, कारण की संकल्पना, तर्कपूर्ण संकल्पना और सही तर्कसंगतता को ध्यान में रखना चाहिए। उससे यह प्रत्याशित है कि वह सभ्य समाज जो कि विधि के नियम द्वारा विनियमित होता है और जिसमें ऐसे लक्षण नहीं होते हैं, के लिए निरंतर अननुपालन और उन्मुक्त भावनाओं से दूर रहे। अपेक्षित प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् किसी अध्यापक से यह अपेक्षा होती है कि वह इन लक्षणों से ऐसा आधार गठित करे जिस पर अधिरचना का निर्माण होता है।”

14. राज्य सरकार ने 19 मार्च, 1991 की अधिसूचना द्वारा डा. यशवंत सिंह परमार बागबानी और वन विश्वविद्यालय, सोलन के लिए सहायता अनुदान को विनियमित करने के लिए नियम भी विरचित किए हैं। तारीख 19 मार्च, 1991 की अधिसूचना के पैरा 3 के अनुसार सहायता अनुदान का प्रयोजन विश्वविद्यालय के विभिन्न कृषि क्रियाकलापों के अधीन शिक्षा, शोध इत्यादि के लिए विकास बनाए रखना और सुविधाओं को बढ़ाना है। सहायता अनुदान के रूप में सहायता, निधियों की उपलब्धता के अध्यक्षीन विश्वविद्यालय के कृषि क्रियाकलापों के लिए अपेक्षित उपकरण, भूमि और भवन तथा प्रशासनिक स्टाफ के खर्च अभिप्रेत हैं और ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिए अभिप्रेत है जैसा कि समय-समय पर सरकार द्वारा विनिश्चित किया जाए। सहायता अनुदान के संदाय की रीति पैरा 4 में उल्लिखित की गई है। सरकार द्वारा मंजूर धनराशि विश्वविद्यालय से उल्लिखित अनुरोध प्राप्त होने पर जिसमें वह प्रयोजन उल्लिखित किया जाए जिसके लिए यह अपेक्षित है, निधियों की उपलब्धता के अध्यक्षीन है। साधारणतया स्व-उल्लिखित प्रस्तावना जो सम्पूर्ण वर्ष की मांग से संबंधित हो, विश्वविद्यालय द्वारा सरकार की मंजूरी से पूर्व जांच के लिए

15 मई तक निदेशक को भेजी जानी चाहिए । अनुदान की मंजूरी निम्नलिखित शर्तों के अधीन है :-

“(i) विश्वविद्यालय सुचारु रूप से कार्य करेगा ।

(ii) विश्वविद्यालय द्वारा अनुदान का उपयोग इसकी प्राप्ति की तारीख से एक वर्ष के भीतर किया जाएगा । एक वर्ष की अवधि के पश्चात् खर्च न की गई अनुदान सहायता की शेष धनराशि के उपयोग के लिए विश्वविद्यालय सरकार से अनुमोदन प्राप्त करेगा ।

(iii) सरकार को अपना यह समाधान करने के लिए विश्वविद्यालय के खातों की जांच करने का अधिकार होगा कि सहायता अनुदान उसी प्रयोजन के लिए खर्च किया गया है जिसके लिए यह मंजूर किया गया है । यदि यह पाया जाता है कि सहायता अनुदान का दुरुपयोग किया गया है तो सरकार उसे विश्वविद्यालय से वसूल करने और भविष्य में संदाय को रोकने के लिए स्वतंत्र होगी ।

(iv) विश्वविद्यालय द्वारा लेखा हिमाचल प्रदेश के स्थानीय निधि लेखा परीक्षक के समक्ष जांच के लिए पेश किया जाएगा ।

(v) सरकारी अनुदानों से पूर्णतया या भागतः अर्जित आस्तियों का, सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना निपटान नहीं किया जाएगा, चाहे वह भारग्रस्त हों या उससे भिन्न प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की गई हों जिसके लिए अनुदान स्वीकार किए गए हैं । विश्वविद्यालय सरकारी अनुदान से पूर्णतया या मुख्यतया अर्जित स्थायी या अर्धस्थायी आस्तियों के संबंध में उपाबंध-ए के रूप में रजिस्टर रखेगा । विश्वविद्यालय द्वारा रजिस्टर मंजूरी देने वाले प्रत्येक प्राधिकारी के संबंध में पृथक् रूप से रखा जाएगा और वार्षिक रूप से उसकी एक प्रति स्थायी अभिलेख के लिए प्रदत्त की जाएगी । आस्तियां पूंजीगत प्रकृति की सभी जंगम और स्थावर संपत्ति के लिए अभिप्रेत होंगी और उसका अधिकतम मूल्य 1,000/- रुपए होगा । तथापि, इसमें पुस्तकालय की पुस्तकें, फर्नीचर से संबंधित सामान सम्मिलित नहीं किया जाएगा ।

6(i) विश्वविद्यालय लेखे और अभिलेख रखेगा और वे सरकार

द्वारा प्रतिनियुक्त नामनिर्देशिनी द्वारा निरीक्षण के लिए उपलब्ध होंगे ।

(ii) विश्वविद्यालय प्राधिकारियों द्वारा किसी विशिष्ट वर्ष के दौरान अगले वर्ष की 15 अप्रैल तक विश्वविद्यालय के लिए जारी सहायता अनुदान के संबंध में मंजूरी देने वाले प्राधिकारी को उपाबंध 'बी' प्ररूप में असंपरीक्षित उपयोग प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाएगा जो हिमाचल प्रदेश स्थानीय निधि लेखा परीक्षक को प्रस्तुत किया जाएगा और जो विहित सभी जांचों के पश्चात् सम्यक्तः प्रति हस्ताक्षरित किया जाएगा जैसा कि हिमाचल प्रदेश वित्त नियम, 1971 (जिल्द-1) में विहित है ।

(iii) विश्वविद्यालय द्वारा विभिन्न बागबानी स्कीमों के अधीन किसी विशिष्ट वर्ष के दौरान बागबानी क्रियाकलापों के लिए विश्वविद्यालय को जारी सहायता अनुदान के संबंध में लेखे स्थानीय निधि लेखा परीक्षक को और सहायता अनुदान की मंजूरी के एक वर्ष के पश्चात् वर्ष के जून मास के अंत तक निदेशक को प्रस्तुत किए जाएंगे । परीक्षक लेखों की प्राप्ति के पश्चात् विभाग द्वारा विश्वविद्यालय को जारी सहायता अनुदान की राशियों के उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए अगले दिसंबर मास से पूर्व विश्वविद्यालय के लेखों की संपरीक्षा करेगा । तत्पश्चात् विश्वविद्यालय सचिव और निदेशक को प्रत्येक बागबानी स्कीम के संबंध में संपरीक्षित उपयोग प्रमाणपत्र की एक प्रति प्रस्तुत करेगा ।

विशिष्ट वर्ष के लिए सहायता अनुदान के संबंध में प्रथम तिमाही किस्तें सरकार द्वारा विश्वविद्यालय द्वारा प्रस्तुत असंपरीक्षित उपयोग प्रमाणपत्र के आधार पर निर्मुक्त की जाएंगी । तथापि, अंतिम तिमाही के लिए किस्त असंपरीक्षित उपयोग प्रमाणपत्र की प्राप्ति पर ही निर्मुक्त की जाएगी ।

विभाग द्वारा विश्वविद्यालय को विभिन्न बागबानी स्कीमों के अधीन बागबानी शिक्षा और अनुसंधान के लिए निर्मुक्त निधियों के उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए विश्वविद्यालय का वित्त अधिकारी प्रत्येक तिमाही के अंत में सचिव/निदेशक को त्रैमासिक संदाय प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा । इस रिपोर्ट में संदाय के

क्रियाशील अंक सम्मिलित होंगे । तारीख 15 दिसंबर, 1979 की अधिसूचना सं. उद्यान सी. ए. (10)-1/78 द्वारा जारी विश्वविद्यालय को सहायता अनुदान को विनियमित करने वाले नियम एतद्द्वारा निरसित किए जाते हैं बशर्ते कि ऐसा निरसन इसके अधीन पहले ही की गई कार्रवाई को प्रभावित नहीं करेगा ।”

15. पैरा 5 के अधीन अधिरोपित इन शर्तों के अनुसार सहायता अनुदान विश्वविद्यालय द्वारा अनुदान प्राप्त होने की तारीख से एक वर्ष के भीतर प्रयुक्त किया जाना चाहिए और सरकार को अपना यह समाधान करने के लिए विश्वविद्यालय के लेखों की जांच करने का अधिकार है कि क्या सहायता अनुदान उस प्रयोजन के लिए खर्च किया गया है जिसके लिए इसको मंजूर किया गया था । पैरा 6 के अनुसार विश्वविद्यालय अपने लेखे और अभिलेख तैयार करेगा और वे राज्य सरकार के नामनिर्देशिती द्वारा निरीक्षण के लिए उपलब्ध होंगे । विश्वविद्यालय से यह भी अपेक्षित है कि वह प्रत्येक वर्ष के अंत में अपने वित्त अधिकारी द्वारा सचिव/निदेशक को त्रैमासिक प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा ।

16. हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय कृषि, बागबानी और वन अधिनियम, 1986 की धारा 44(4) तथा तारीख 19 मार्च, 1991 को अधिसूचित सहायता अनुदान नियमों के अनुसार राज्य सरकार इस बात के लिए आबद्ध है कि वह विश्वविद्यालय के स्टाफ के वेतन और भत्तों, अत्यावश्यकताओं, प्रदायों और सेवाओं के लिए पर्याप्त निधियों का इंतजाम करे । धारा 44(4) प्रमिततः राज्य सरकार द्वारा प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को सहायता अनुदान का संदाय करने के लिए एक वचनबंध है । यदि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को धारा 44(4) तथा सहायता अनुदान नियमों के अनुसार सहायता अनुदान का संदाय नहीं किया जाता है तो उसका शैक्षिक स्तर पूर्ण रूप से प्रभावित होगा ।

17. ऊपर किए गए विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय का पेंशन की बकाया के संदाय को स्थगित करने का विनिश्चय मनमाना और अयुक्तियुक्त है और इसलिए यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमणकारी है । प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय तारीख 1 जनवरी, 2006 से तारीख 31 मार्च, 2011 तक

बकाया का संदाय करने के लिए आबद्ध है। समान रूप में प्रत्यर्थी-राज्य को मृत्यु-सहयुक्त-सेवानिवृत्ति उपदान 3.5 लाख रुपए तक निर्बंधित करने की कोई अधिकारिता नहीं है। स्टेच्यूट 9.27 के अनुसार स्कीम के अन्तर्गत आने वाले विश्वविद्यालय कर्मचारियों के मामले में पेंशन-सहयुक्त-उपदान-सहयुक्त-भविष्य निधि के लिए नियम वही हैं जिनका हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा समय-समय पर अपने कर्मचारियों के मामले में अनुसरण किया गया है। चूंकि राज्य सरकार के कर्मचारियों के मामले में उपदान 3.5 लाख रुपए निर्बंधित नहीं किया गया है इसलिए प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त कर्मचारियों के मामले में इसे निर्बंधित करने का निदेश जारी नहीं किया जा सकता। प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा उपदान 3.5 लाख रुपए निर्बंधित किए जाने की सिफारिशें मनमानी हैं।

18. इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने एक ऐसे ही मामले में जो चौधरी स्वर्ण कुमार हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय के कर्मचारियों से संबंधित था, प्रत्यर्थियों को सेवानिवृत्ति उपदान/मृत्यु उपदान की सीमा अनिर्बंधित करने के लिए आदेश किया था और 2011 की सी. डब्ल्यू. पी. सं. 6078 में जो तारीख 15 सितंबर, 2011 को विनिश्चित की गई थी, तारीख 5 अगस्त, 2011 की अधिसूचना के आधार पर पेंशन की बकाया और महंगाई भत्ता भी निर्मुक्त किया था। प्रत्यर्थियों को, प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त कर्मचारियों की कठिनाइयों को महसूस करना चाहिए।

19. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **अखिल भारतीय रिजर्व बैंक के सेवानिवृत्त अधिकारी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य¹** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि पेंशन पूर्व सेवा के लिए स्थगित प्रतिकर का भाग है। माननीय न्यायालय ने उक्त मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

“5. पेंशन की संकल्पना अब सुज्ञात हो गई है और यह बात इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर स्पष्ट की गई है। यह एक दान या इनाम नहीं है और न ही ऐसा मुफ्त का संदाय है जो नियोजक

¹ (1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 664.

की मर्जी या इच्छा पर निर्भर है। यह लंबी सेवा करने से अर्जित होती है और प्रायः इसे पूर्व सेवा के लिए प्रतिकर के स्थगित भाग के रूप में वर्णित किया जाता है। तथ्यतः यह ऐसी प्रकृति की होती है जो किसी सेवानिवृत्त कर्मचारी के जीवन के अंतिम दिनों के लिए इंतजाम करने के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना के रूप में दी जाती है। ऐसी सामाजिक सुरक्षा योजनाएं संविधान की सामाजिक-आर्थिक अपेक्षाओं से संगत हैं जहां नियोजक संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत एक राज्य है। सभी बैंक कर्मचारी जो तारीख 1 नवंबर, 1990 के पूर्व सेवानिवृत्त हुए थे, अभिदायी भविष्य निधि स्कीम द्वारा विनियमित होते हैं। तथापि, विनियमों के अधीन पेंशन स्कीम के पुरःस्थापन द्वारा उन कर्मचारियों को जो तारीख 1 जनवरी, 1986 को या उसके पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं या जिन्होंने पेंशन स्कीम लेने का इस शर्त पर विकल्प दिया है कि वे अभिदायी भविष्य निधि स्कीम के लिए नियोजक के अभिदाय को ब्याज सहित वापस करेंगे और इसके अतिरिक्त सेवानिवृत्ति पर इसके पुनः संदाय तक भविष्य निधि धनराशि की प्राप्ति की तारीख से 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज का संदाय करेंगे। याचियों की यह शिकायत है कि ऐसे सभी कर्मचारी जो अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख पर अभिदायी भविष्य निधि स्कीम द्वारा विनियमित होते हैं, एक जैसा वर्ग गठित करते हैं और विनियमों के अधीन पुरःस्थापित पेंशन स्कीम उन कर्मचारियों के बीच विभाजित होने का अनुरोध करेंगे जो तारीख 31 दिसंबर, 1985 को या उससे पूर्व सेवानिवृत्त हुए हैं और उन कर्मचारियों के बीच जो तारीख 1 जनवरी, 1986 को या उसके पश्चात् सेवानिवृत्त हुए हैं; पश्चात्पूर्वी पेंशन स्कीम का फायदा देने के लिए विकल्प का उपबंध किया गया है जबकि पूर्ववर्ती को आरंभ से ही ऐसा फायदा देने से इनकार किया गया है। याचियों ने यह दलील दी है कि एक ही समूह के सदस्यों के बीच इस प्रकार का बनावटी विभाजन संविधान के अनुच्छेद 14 का स्पष्ट अतिक्रमण है जैसा कि ननकारा, ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 130 वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है।”

20. माननीय उच्चतम न्यायालय ने पेप्सू रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन पटियाला बनाम मंगल सिंह और अन्य¹ वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि पेंशन एक ऐसा सेवानिवृत्ति फायदा है जिसमें कर्मचारी द्वारा की गई पूर्व सेवाओं के बदले में व्यक्ति को नियमित संदाय सम्मिलित है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने उक्त मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

“21. पेंशन एक ऐसा सेवानिवृत्ति फायदा है जिसमें सेवक द्वारा की गई पूर्वतर सेवाओं में सेवक को नियमित संदाय की प्रकृति का फायदा सम्मिलित है। हम यह उल्लेख करना चाहते हैं कि यद्यपि पेंशन एक इनाम नहीं है, तथापि, यह अधिकार के रूप में दावा किए जाने योग्य है, यद्यपि यह अधिकार आत्यंतिक या शर्त रहित नहीं है। पेंशन का दावा करने वाले व्यक्ति को विधि में ऐसी पेंशन की हकदारी साबित करनी चाहिए। यह हकदारी विभिन्न बातों या शर्तों पर निर्भर हो सकती है। वर्तमान मामले में सेवानिवृत्त कर्मचारी पेंशन के लिए हकदार हैं या नहीं, यह बात नियमों और विनियमों के उपबंधों और निर्वचन पर निर्भर है। अभिदायी भविष्य निधि के संबंध में आसान उपाय किया जाना प्रतीत होता है जहां कर्मचारी को उसकी सेवानिवृत्ति के समय कुल धनराशि संदत्त की गई है जो उसने साधारणतया नियोजक द्वारा किए गए समान अभिदाय के साथ संदत्त की है। संक्षेप में हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि इस न्यायालय द्वारा यह बार-बार कहा गया है कि ‘पेंशन समय-समय पर संदेय है जब पेंशनधारी जीवित हो जबकि अभिदायी भविष्य निधि केवल एक बार सेवानिवृत्ति के समय संदत्त किया जाता है।’ अतः संकल्पनात्मक रूप से पेंशन और अभिदायी भविष्य निधि पृथक् हैं और भिन्न-भिन्न हैं।”

21. पेंशन और उपदान भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-क के अर्थान्तर्गत संपत्ति है। इससे विधि के उपबंधों के सिवाय इनकार नहीं किया जा सकता। याची-सोसाइटी के सदस्य पेंशन पाने और अपनी सेवानिवृत्ति के तुरन्त पश्चात् अन्य सेवानिवृत्ति फायदों और समय-समय पर

¹ (2011) 11 एस. सी. सी. 702.

पुनरीक्षित फायदों के लिए हकदार बन गए हैं ।

22. तदनुसार ऊपर की गई मताभिव्यक्तियों और विवेचना को दृष्टिगत करते हुए यह रिट याचिका मंजूर की जाती है । तारीख 19 जुलाई, 2011 के पत्र में 3.50 लाख रुपए की सीमा तक उपदान को निर्बंधित करने का विनिश्चय विच्छेदन के सिद्धांत को लागू करने के पश्चात् अभिखंडित किया जाता है । प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह याची-सोसाइटी के सदस्यों को तारीख 1 जनवरी, 2006 से तारीख 31 मार्च, 2011 तक 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित पुनरीक्षित पेंशन की बकाया का संदाय करे । प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को यह भी निदेश दिया जाता है कि वह याची-सोसाइटी के सदस्यों को तारीख 1 जनवरी, 2006 से पुनरीक्षित दर पर राज्य सरकार के कर्मचारियों के समान अधिकतम 10.00 लाख रुपए की सीमा तक ब्याज सहित मृत्यु-सहयुक्त-सेवानिवृत्ति उपदान की बकाया का संदाय करे जैसा कि केन्द्रीय सिविल सेवा (पेंशन) नियम, 1972 के नियम 68 के साथ संलग्न अनुदेश सं. II के साथ पठित नियम 68 के अधीन विहित किया गया है । आदेश का पालन आज से 8 सप्ताह की अवधि के भीतर किया जाए । राज्य सरकार प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के अध्यापकों/वैज्ञानिकों द्वारा झेली जा रही कठिनाई को समाप्त करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र तथापि, आज से 3 मास से अनधिक की अवधि में सहायता अनुदान जारी करने के लिए निदेश जारी करे । लंबित आवेदनों का भी, यदि कोई हों, निपटान किया जाता है । तथापि, खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

करम चन्द और अन्य

बनाम

जसवीर कौर और अन्य

तारीख 16 अगस्त, 2013

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 – धारा 14(3)(ग) – मकान-मालिक द्वारा भवन के पुनः निर्माण के लिए भवन खाली कराना – किराया नियंत्रक द्वारा किराए की बकाया और भवन के पुनः निर्माण के आधार पर बेदखली का आदेश – पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय द्वारा पुनः निर्माण के लिए अनुमोदित रेखांकन दाखिल करने की शर्त के साथ किराया नियंत्रक के आदेश की पुष्टि – किराएदार द्वारा नियंत्रक के आदेशानुसार उपयोग और अधिभोग प्रभार जमा न किया जाना – विधि के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि मकान-मालिक निष्पादन न्यायालय के समक्ष भवन का स्वीकृत रेखांकन पेश करे – किराएदार बेदखल किए जाने, बकाया किराए का संदाय करने तथा प्रभारों की वसूली किए जाने के लिए जिम्मेदार है ।

यह आवेदन 2010 के मामला संख्या 9-10 में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) के न्यायालय द्वारा तारीख 19 जुलाई, 2012 को पारित आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया है । पुनरीक्षण आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – तारीख 20 जून, 2008 को किराया आवेदन मंजूर किया गया था । अपील प्राधिकारी द्वारा किराया अपील तारीख 12 अगस्त, 2010 को खारिज कर दी गई थी । इस न्यायालय ने निर्णीत-ऋणियों को अपील प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित करने की तारीख से 10,000/- रुपए प्रति मास उपयोग और अधिभोग प्रभार जमा करने के लिए निदेश दिया था । न्यायालय द्वारा तारीख 4 अक्टूबर, 2010 के आदेश के विरुद्ध पेश किया गया पुनर्विलोकन आवेदन खारिज कर दिया गया था और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष इजाजत याचिका भी खारिज कर दी गई थी । यह विवादित नहीं है कि इस पुनरीक्षण आवेदन के लंबन के दौरान भी निर्णीत-ऋणियों द्वारा उपयोग और अधिभोग प्रभार जमा नहीं किए गए हैं । विद्वान्

सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) ने भी यह मत व्यक्त किया है कि इस न्यायालय द्वारा मामला विनिश्चित किए जाने पर भी उपयोग और अधिभोग प्रभार जमा नहीं किए गए हैं। प्रारंभतः विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) द्वारा आवेदन इस आधार पर खारिज किया गया था कि निष्पादन न्यायालय के समक्ष भवन के रेखांकन पेश नहीं किए गए हैं। अतः माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सुस्थापित विधि को दृष्टिगत करते हुए निर्णीत-ऋणी डिक्री धारकों को परिसर के पुनः निर्माण के लिए समर्थ बनाने हेतु बेदखल किए जाने और भवन के उपयोग और अधिभोग प्रभारों को जैसा कि न्यायालय द्वारा तारीख 4 अक्टूबर, 2010 को आदेश किया गया है, जमा न करने के लिए बेदखल किए जाने के जिम्मेदार हैं। ऊपर उल्लिखित माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के अनुसार मकान-मालिक से यह अपेक्षित नहीं है कि वह निष्पादन न्यायालय के समक्ष भवन का स्वीकृत रेखांकन पेश करे। तदनुसार ऊपर की गई मताभिव्यक्तियों और चर्चा को दृष्टिगत करते हुए आवेदन मंजूर किया जाता है। विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) द्वारा तारीख 19 जुलाई, 2012 को पारित आदेश अपास्त किया जाता है। सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) को यह निदेश दिया जाता है कि वह निर्णीत-ऋणियों के विरुद्ध कब्जे का अधिपत्र जारी करे और अपील प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की तारीख अर्थात् तारीख 12 अगस्त, 2010 से न्यायालय द्वारा यथा आदेशित 10,000/- रुपए प्रतिमास की दर से उपयोग और अधिभोग प्रभारों की वसूली के लिए निष्पादन कार्यवाहियां भी करे। (पैरा 8, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 5 एस. सी. सी. 243 :
हरिदास शर्मा बनाम विकास सूद और अन्य । 9

पुनरीक्षणीय (सिविल) अधिकारिता : 2012 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 125.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदकों की ओर से

श्री जी. सी. गुप्ता और सुश्री मीरा देवी

प्रत्यर्थियों की ओर से

सर्वश्री अजय कुमार और सुमित सूद

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह आवेदन 2010 के मामला संख्या 9-10 में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) के न्यायालय द्वारा तारीख 19 जुलाई, 2012 को पारित आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया है।

2. इस आवेदन के न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक 'मुख्य तथ्य' इस प्रकार हैं कि आवेदक-डिक्री धारकों (जिन्हें आगे सुविधा के लिए संक्षेप में 'डिक्री धारक' कहा गया है) ने हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 के अधीन विद्वान् किराया नियंत्रक के न्यायालय में प्रत्यर्थी-निर्णीत-ऋणियों (जिन्हें आगे सुविधा के लिए संक्षेप में 'निर्णीत-ऋणी' कहा गया है) अर्थात् श्री हिम्मत सिंह (जिसे आगे 'किराएदार' कहा गया है) के पूर्व-हिताधिकारियों के विरुद्ध 2002 का किराया आवेदन संख्या 49/2 फाइल किया था। किराया नियंत्रक द्वारा आवेदन तारीख 20 जून, 2008 को मंजूर किया गया था। किराएदार की बेदखली का आदेश इस आधार पर किया गया था कि उसके ऊपर जनवरी 1984 से 200/- रुपए प्रतिमास की दर से किराए की बकाया थी जिस पर 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज लगाया गया था। किराएदार की बेदखली का आदेश इस आधार पर भी किया गया था कि डिक्री धारकों को वाद परिसर का पुनः निर्माण करने के लिए परिसर की सद्भाविक आवश्यकता थी क्योंकि वाद परिसर आवास के लिए असुरक्षित और अनुपयुक्त बन गया था और इसलिए भवन खाली कराए बिना उसका पुनः निर्माण नहीं कराया जा सकता। किराएदार को मकान मालिकों को 30 दिन की अवधि के भीतर वाद परिसर सुपुर्द करने का निदेश दिया गया था। यदि किराएदार तीस दिन की अवधि के भीतर 9 प्रतिशत ब्याज सहित किराए की बकाया जमा नहीं करता है तो उसे इस आधार पर बेदखल करने का भी आदेश दिया गया था। निर्णीत-ऋणियों ने विद्वान् अपील प्राधिकारी के समक्ष अपील फाइल की थी जो कि 2008 की किराया अपील संख्या 18-एस/13(ख) है। विद्वान् अपील प्राधिकारी द्वारा यह अपील तारीख 12 अगस्त, 2010 को खारिज कर दी गई थी। निर्णीत-ऋणियों ने इस न्यायालय के समक्ष 2010 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन संख्या 112 फाइल किया था। न्यायालय ने तारीख 4 अक्टूबर, 2010 को एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा निर्णीत-ऋणियों को 10,000/- रुपए प्रतिमास की दर से उपयोग और अधिभोग प्रभारों का संदाय करने के लिए आदेश किया गया

था । निर्णीत-ऋणियों ने तारीख 4 अक्टूबर, 2010 को पुनर्विलोकन आवेदन भी फाइल किया था । न्यायालय द्वारा यह आवेदन तारीख 20 सितंबर, 2011 को खारिज कर दिया गया था । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा, आक्षेपित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका भी खारिज कर दी गई थी ।

3. इस दौरान डिक्री धारकों ने कब्जे के लिए अधिपत्र जारी करने के लिए विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) के समक्ष 2010 का निष्पादन आवेदन संख्या 9-10 फाइल किया । निर्णीत-ऋणियों द्वारा इस पर आक्षेप फाइल किए गए थे । अतिरिक्त आक्षेप भी फाइल किए गए थे । निर्णीत-ऋणियों द्वारा पेश किए गए आक्षेपों के विरुद्ध डिक्री धारकों द्वारा जवाब भी फाइल किया गया था । तथापि, तथ्यात्मक स्थिति यह है कि इस न्यायालय द्वारा तारीख 26 अप्रैल, 2012 को 2010 का सिविल पुनरीक्षण संख्या 112 खारिज कर दिया गया । तारीख 26 अप्रैल, 2012 के निर्णय का प्रवर्तनीय भाग इस प्रकार है :-

“9. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए विद्वान् किराया नियंत्रक द्वारा पारित और विद्वान् अपील प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किए गए बेदखली के आक्षेपित आदेश की निम्नलिखित शर्तों के अध्यक्षीन पुष्टि की जाती है -

(i) माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा हैरिंगटन हाउस स्कूल जिसका कि इस न्यायालय ने अनेक मामलों में अनुसरण किया है, वाले मामले में अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए बेदखली का आदेश तब तक निष्पादित किए जाने योग्य नहीं होगा जब तक कि मकान-मालिक निष्पादन न्यायालय के समक्ष प्राधिकारी द्वारा सम्यक्तः मंजूर किया गया भवन का रेखांकन प्रस्तुत न कर दें ।

(ii) किराएदार अधिनियम की धारा 14 में किए गए संशोधन जो इसकी उपधारा 3 के खण्ड (ग) के अंतःस्थापन द्वारा किया गया है, संरक्षण के हकदार होंगे अर्थात् उन्हें मकान-मालिक और किराएदार के बीच उस परिसर के जिसको पुनः निर्मित किया जाएगा, उस क्षेत्र के बराबर जिसमें कि वह

किराएदार था, आपसी करार के आधार पर किराएदारी के नए निबंधनों में पुनः प्रवेश करने का अधिकार होगा ।”

4. विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) ने तारीख 19 जून, 2012 को आक्षेपों का निपटान किया । डिक्री धारकों को न्यायालय द्वारा जारी निदेशों को दृष्टिगत करते हुए सम्यक्तः मंजूर रेखांकन प्रस्तुत करने के लिए निदेश दिए गए थे ।

5. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री जी. सी. गुप्ता ने बल देकर यह दलील दी है कि निर्णीत-ऋणियों ने उपयोग और अधिभोग प्रभार जमा नहीं किए, जैसा कि 2010 के सिविल पुनरीक्षण संख्या 112 में इस न्यायालय द्वारा तारीख 4 अक्टूबर, 2010 को आदेश किया गया था । तत्पश्चात् उन्होंने यह दलील दी कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए निष्पादन न्यायालय के समक्ष स्वीकृत रेखांकन पेश करने की आवश्यकता नहीं थी ।

6. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अजय कुमार ने तारीख 19 जून, 2012 के आदेश का समर्थन किया है ।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसलों को सुना और दी गई दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया ।

8. ऊपर उल्लिखित तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि तारीख 20 जून, 2008 को किराया आवेदन मंजूर किया गया था । अपील प्राधिकारी द्वारा किराया अपील तारीख 12 अगस्त, 2010 को खारिज कर दी गई थी । इस न्यायालय ने निर्णीत-ऋणियों को अपील प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित करने की तारीख से 10,000/- रुपए प्रतिमास उपयोग और अधिभोग प्रभार जमा करने के लिए निदेश दिया था । न्यायालय द्वारा तारीख 4 अक्टूबर, 2010 के आदेश के विरुद्ध पेश किया गया पुनर्विलोकन आवेदन खारिज कर दिया गया था और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष इज़ाजत याचिका भी खारिज कर दी गई थी । यह विवादित नहीं है कि इस पुनरीक्षण आवेदन के लंबन के दौरान भी निर्णीत-ऋणियों द्वारा उपयोग और अधिभोग प्रभार जमा नहीं किए गए हैं । विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) ने भी यह मत व्यक्त किया है कि इस न्यायालय द्वारा मामला विनिश्चित किए जाने पर भी उपयोग और अधिभोग प्रभार जमा

नहीं किए गए हैं। प्रारंभतः विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) द्वारा आवेदन इस आधार पर खारिज किया गया था कि निष्पादन न्यायालय के समक्ष भवन के रेखांकन पेश नहीं किए गए हैं।

9. माननीय उच्चतम न्यायालय ने हरिदास शर्मा बनाम विकास सूद और अन्य¹ वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि हिमाचल प्रदेश शहरी किराया नियंत्रण अधिनियम, 1987 की धारा 14(3)(ग) के अधीन सम्यक्तः स्वीकृत भवन का रेखांकन किराएदार की बेदखली के लिए मकान-मालिक को हकदार बनाने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त नहीं है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने उक्त मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :-

“तथ्यतः अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई इस अपील में जो एक मात्र प्रश्न हमें विनिश्चित करना है वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय यह निदेश दे सकता है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत किए गए विधिमान्य पुनरीक्षित/नवीकृत भवन का रेखांकन दाखिल करने पर ही बेदखली का आदेश निष्पादन के लिए उपलब्ध होगा। उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित हैरिंगटन हाउस स्कूल बनाम एस. एम. इसपहानी और अन्य वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है और हमने इस मामले में यह पाया है कि मकान-मालिक पेशे से भवन निर्माता है और उन्हें वाद परिसर की तुरंत गिराने के प्रयोजन के लिए आवश्यकता थी जिससे कि वे बहुमंजिलीय इमारत का निर्माण कर सकें और किराएदार किराए पर लिए गए भवन में विद्यालय चलाते थे जिसमें लगभग 200 छात्र अध्ययन कर रहे थे और अध्यापन करने वाले स्टाफ के 15 सदस्य और गैर-अध्यापन करने वाले स्टाफ के 8 सदस्य नियोजित थे और स्कूल अप्रवासी भारतीयों के बच्चों की आवश्यकतों को पूरी करता था। इस न्यायालय ने यह पाया है कि यद्यपि प्रस्तावित निर्माण के रेखांकन तैयार थे और साक्ष्य में पेश किए गए थे तथापि, रेखांकन अनुमोदन के लिए स्थानीय प्राधिकारियों के समक्ष पेश नहीं किए गए थे और इन तथ्यों के आधार पर न्यायमूर्ति आर. सी. लाहोती ने

¹ (2013) 5 एस. सी. सी. 243.

न्यायालय की ओर से निर्णय लिखा था और उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने से इनकार किया था और यह निदेश देते हुए नियंत्रक द्वारा पारित बेदखली आदेश की पुष्टि की थी कि मकान-मालिक पुनः निर्माण के रेखांकन स्थानीय प्राधिकारियों के समक्ष अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करेंगे और स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा रेखांकन स्वीकृत किए जाने के पश्चात् ही बेदखली की डिक्री निष्पादन के लिए उपलब्ध होगी और यह भी उल्लिखित किया था कि ऐसा स्वीकृत रेखांकन या अनुमोदित भवन रेखांकन निष्पादन न्यायालय के समक्ष पेश किया जाएगा जिस पर निष्पादन न्यायालय किराएदार को संपत्ति खाली करने के लिए और मकान-मालिक को कब्जा प्रदान करने के लिए युक्तियुक्त समय अनुज्ञात करेगा और उस समय तक किराएदार उक्त परिसर के उपयोग और अधिभोग के लिए उस दर से जिस पर वे संदत्त किए जा रहे हैं, प्रभारों का संदाय करते रहेंगे ।

18. इसके प्रतिकूल वर्तमान मामले में जैसा कि हमने उल्लेख किया है, किराया नियंत्रक ने मकान-मालिक की सद्भाविक आवश्यकता का अवधारण करते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि मकान-मालिक ने स्वीकृततः शिमला नगर निगम से मंजूरी प्राप्त कर ली है और तदनुसार बेदखली का आदेश पारित किया और बेदखली के इस आदेश को किसी भी प्राधिकारी अर्थात् अपील प्राधिकारी या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा विक्षुब्ध नहीं किया गया । हमारी सुविचारित राय में जब एक बार उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 14(4) के अधीन नियंत्रक द्वारा पारित बेदखली आदेश की पुष्टि कर दी है तो किराएदार मकान-मालिक को भवन का कब्जा देने के लिए आबद्ध है और वह केवल मकान-मालिक को भवन का कब्जा देने के लिए युक्तियुक्त समय की मांग कर सकता है और इसलिए उच्च न्यायालय का यह निदेश कि बेदखली के आदेश का निष्पादन केवल भवन के पुनरीक्षित रेखांकन का अनुमोदन होने के पश्चात् ही किया जा सकता है, स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 14(4) और इसमें दिए गए परंतुक के उपबंध के प्रतिकूल है ।”

10. अतः माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सुस्थापित

विधि को दृष्टिगत करते हुए निर्णीत-ऋणी डिक्री धारकों को परिसर का पुनः निर्माण के लिए समर्थ बनाने हेतु बेदखल किए जाने और भवन के उपयोग और अधिभोग प्रभारों को जैसा कि न्यायालय द्वारा तारीख 4 अक्टूबर, 2010 को आदेश किया गया है, जमा न करने के लिए बेदखल किए जाने के जिम्मेदार हैं। ऊपर उल्लिखित माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के अनुसार मकान-मालिक से यह अपेक्षित नहीं है कि वह निष्पादन न्यायालय के समक्ष भवन का स्वीकृत रेखांकन पेश करे।

11. तदनुसार ऊपर की गई मताभिव्यक्तियों और चर्चा को दृष्टिगत करते हुए आवेदन मंजूर किया जाता है। विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) द्वारा तारीख 19 जुलाई, 2012 को पारित आदेश अपास्त किया जाता है। सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) को यह निदेश दिया जाता है कि वह निर्णीत-ऋणियों के विरुद्ध कब्जे का अधिपत्र जारी करे और अपील प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की तारीख अर्थात् तारीख 12 अगस्त, 2010 से न्यायालय द्वारा यथा आदेशित 10,000/- रुपए प्रतिमास की दर से उपयोग और अधिभोग प्रभारों की वसूली के लिए निष्पादन कार्यवाहियां भी करे। पक्षकारों को तारीख 30 अगस्त, 2013 को विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खण्ड) के समक्ष उपस्थित होने का निदेश दिया जाता है। लंबित आवेदन यदि कोई हो, का भी निपटान किया हुआ समझा जाएगा। खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया गया।

मह.

संसद् के अधिनियम

मुखतारनामा अधिनियम, 1882

(1882 का अधिनियम संख्यांक 7)¹

[24 फरवरी, 1882]

मुखतारनामों से सम्बन्धित विधि का संशोधन करने के लिए अधिनियम

मुखतारनामों से सम्बन्धित विधि का संशोधन करने के प्रयोजन के लिए एतद्द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :-

1. **संक्षिप्त नाम** – इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम मुखतारनामा अधिनियम, 1882 है ;

स्थानीय विस्तार – इसका विस्तार ²[जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय] सम्पूर्ण भारत पर है ;

प्रारंभ – और यह 1882 की मई के प्रथम दिन को प्रवृत्त होगा ।

³**1क. परिभाषा** – इस अधिनियम में, “मुखतारनामा” के अन्तर्गत ऐसी लिखत भी है जो किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति को उस व्यक्ति की ओर से और उसके नाम से, जो उसका निष्पादन करता है, कार्य करने के लिए सशक्त करती है]।

2. **मुखतारनामे के अधीन निष्पादन** – किसी मुखतारनामे का आदाता, यदि वह ठीक समझता है तो, मुखतारनामे के दाता के प्राधिकार से कोई

¹ दादरा और नागर हवेली (विधि) विनियम, 1963 (1963 का 6) की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा दादरा और नागर हवेली पर 1965 के विनियम सं. 8 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा लक्कादीव, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप पर और पांडिचेरी (विधि विस्तारण) अधिनियम, 1968 (1968 का 26) द्वारा पांडिचेरी पर विस्तार किया गया । यह अधिनियम का. आ. 650 (अ), तारीख 24.8.1984, भारत का राजपत्र, भाग 2, अनुभाग 3(ii) द्वारा सिक्किम राज्य में प्रवृत्त होगा ।

² 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा “भाग ख राज्यों के सिवाय” के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

³ 1982 के अधिनियम सं. 55 की धारा 2 द्वारा अंतःस्थापित ।

^{1***} लिखत या बात अपने नाम और हस्ताक्षर से और अपनी मुद्रा से, जहां मुद्रा लगाना अपेक्षित है, कर सकता है या निष्पादित कर सकता है ; और इस प्रकार निष्पादित और कृत प्रत्येक ^{1***} लिखत और बात विधि में इस प्रकार प्रभावशील होगी मानो वह मुखतारनामे के आदाता द्वारा उसके दाता के नाम में और हस्ताक्षर और मुद्रा से कृत या निष्पादित है ।

यह धारा उन सभी मुखतारनामों को लागू होती है जो इस अधिनियम के प्रवृत्त होने के पूर्व या पश्चात् निष्पादित लिखतों द्वारा सृजित किए गए हैं ।

3. मृत्यु आदि की सूचना के बिना मुखतारनामे के अधीन अटर्नी द्वारा किए गए संदायों का मान्य होना – मुखतारनामे के अनुसरण में सद्भावपूर्वक संदाय या कार्य करने वाला कोई व्यक्ति उस संदाय या कार्य की बाबत इस कारण दायी नहीं होगा कि उस संदाय या कार्य के पहले, मुखतारनामे का दाता मर गया है या ^{2***} विकृत चित्त ^{2***} या शोधक्षम हो गया है या उसने मुखतारनामा प्रतिसंहत कर लिया है, यदि मृत्यु ^{2***} चित्तविकृति, ^{2***} शोधक्षमता या प्रतिसंहरण का तथ्य संदाय या कार्य के समय उसे करने वाले व्यक्ति को ज्ञात नहीं था ।

किन्तु यह धारा इस प्रकार संदत्त किसी धन में हितबद्ध किसी व्यक्ति के ऐसे धन पाने वाले के विरुद्ध किसी अधिकार को प्रभावित नहीं करेगी, और उस व्यक्ति को ऐसे पाने वाले के विरुद्ध वैसा ही उपचार प्राप्त होगा जैसा कि उसे संदाय करने वाले के विरुद्ध प्राप्त होता, यदि उसके द्वारा संदाय नहीं किया जाता ।

यह धारा केवल उन्हीं संदायों और कार्यों को लागू होती है जो इस अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् किए गए हैं ।

4. मुखतारनामा सृजित करने वाली मूल लिखतों का जमा किया जाना – (क) मुखतारनामा सृजित करने वाली लिखत, उसका निष्पादन शपथपत्र द्वारा, कानूनी घोषणा द्वारा या अन्य पर्याप्त साक्ष्य द्वारा सत्यापित करके, ऐसे शपथपत्र या घोषणा सहित, यदि कोई हो, उस उच्च न्यायालय

¹ 1982 के अधिनियम सं. 55 की धारा 3 द्वारा “हस्तांतरणपत्र” शब्द का लोप किया गया ।

² 1982 के अधिनियम सं. 55 की धारा 4 द्वारा “पागल”, “या दिवालिया”, “पागलपन” और “दिवालियापन” शब्दों का लोप किया गया ।

¹[या जिला न्यायालय] में जमा की जा सकती है जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर वह लिखत हो ।

(ख) इस प्रकार जमा की गई लिखतों की एक पृथक् फाइल रखी जाएगी ; और कोई भी व्यक्ति उस फाइल की जांच कर सकता है, और इस प्रकार जमा की गई प्रत्येक लिखत का निरीक्षण कर सकता है; और अनुरोध किए जाने पर उसे उसकी एक प्रमाणित प्रति दी जाएगी ।

(ग) इस प्रकार जमा की गई किसी लिखत की प्रति कार्यालय में प्रस्तुत की जा सकती है और उसे प्रमाणित प्रति के रूप में स्टाम्पित या चिह्नित किया जा सकता है और इस प्रकार स्टाम्पित या चिह्नित कर दिए जाने पर वह प्रमाणित प्रति बन जाएगी और होगी ।

(घ) इस प्रकार जमा की गई किसी लिखत की प्रमाणित प्रति, बिना अतिरिक्त सबूत के, लिखत की अन्तर्वस्तु का और उच्च न्यायालय ¹[या जिला न्यायालय] में उसके जमा किए जाने का पर्याप्त साक्ष्य होगी ।

(ङ) उच्च न्यायालय, समय-समय पर, इस धारा के प्रयोजनों के लिए, और राज्य सरकार की सहमति से, खण्ड (क), (ख) और (ग) के अधीन ली जाने वाली फीस विहित करने के लिए नियम बना सकता है ।

2* * * *

(छ) यह धारा मुखतारनामे सृजित करने वाली लिखतों को लागू होती है, चाहे वे इस अधिनियम के प्रवृत्त होने के पूर्व निष्पादित की गई हों या चाहे उसके पश्चात् ।

5. विवाहित स्त्री का मुखतारनामा – ³[किसी विवाहित स्त्री को, जो वयस्क है] इस अधिनियम के आधार पर, किसी निर्वसीयती लिखत द्वारा अपनी ओर से कोई निर्वसीयती लिखत निष्पादित करने के या कोई अन्य कार्य करने के प्रयोजन के लिए जो वह स्वतः निष्पादित कर सकती हो या अपनी ओर से उसी प्रकार एक अटर्नी नियुक्त करने की शक्ति होगी

¹ 1982 के अधिनियम सं. 55 की धारा 5 द्वारा अंतःस्थापित ।

² 1900 के अधिनियम सं. 6 की धारा 48 और अनुसूची 2 द्वारा खंड (च) निरसित ।

³ 1982 के अधिनियम सं. 55 की धारा 6 द्वारा (22.10.1982 से) कपितय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

¹[मानो वह अविवाहित है] और मुखतारनामे को सृजित करने वाली लिखतों के सम्बन्ध में इस अधिनियम के उपबन्ध उसे लागू होंगे ।

यह धारा केवल उन्हीं लिखतों को लागू होती है जो इस अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् निष्पादित किए गए हैं ।

6. [1886 के अधिनियम सं. 28 की धारा 39 निरसित] – संशोधन अधिनियम, 1891 (1891 का 12) की धारा 2 तथा अनुसूची द्वारा निरसित ।

¹ 1982 के अधिनियम सं. 55 की धारा 6 द्वारा (22.10.1982 से) कपितय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।